विवेक-ज्योति

वर्ष ४३ अंक ११ नवम्बर २००५ मूल्य रु. ६.००
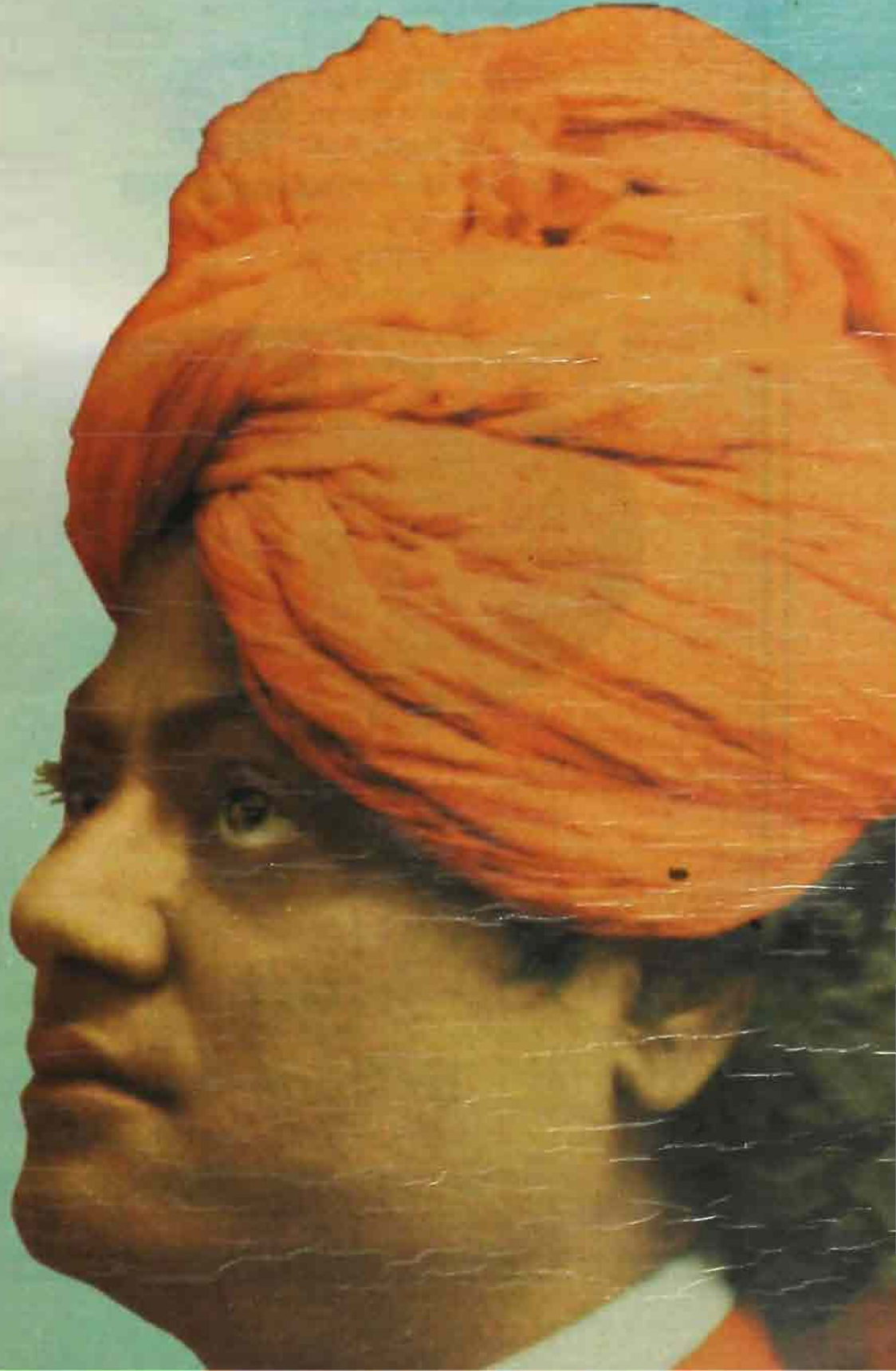
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २००५

प्रबन्ध-सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४३
अंक ११

वार्षिक ५०/- एक प्रति ६/-

५ वर्षों के लिए — रु. २२५/-

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) — रु. १,०००/-

विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर, आजीवन – २०० डॉलर (हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

{सदस्यता-शुल्क की राशि का बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से ही बनवायें}

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर - ४९२ ००१ (छ.ग.)

दूरभाष : ०७७१ - २२२५२६९, ५०३६९५९, २२२४११९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)

लेखकों से निवेदन

पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें —

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषय पर रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। ऐसी हो कि पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुई हो।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दिया जाय।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिए अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कविताएँ इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का परा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

सदस्यता के नियम

(१) पत्रिका के नये सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। यदि किसी पिछले अंक से बनना हो, तो सूचित करें।

(२) अपना नाम तथा पिनकोड सहित पूरा पता स्पष्ट रूप से लिखें। नये सदस्य हों, तो लिखें — 'नया सदस्य'।

(३) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(४) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।

(५) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रुपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अतः इसे हमें न भेजें।

(६) सदस्यता-शुल्क की राशि का बैंक-ड्राफ्ट — **'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़)** के नाम से ही बनवायें।

(७) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

Families prosper
the Nation grow
the Mother Earth save resources

Sudarshan Saur

A Name grown rapidly throughout India, bringing consistent innovations in 'Solar Energy Utilization system', now bring the **'VACUUM TUBE TECHNOLOGY'** for **SOLAR WATER HEATERS.**

To strengthen the Dealer Network,
company needs
devoted and dynamic businessmen
as Business Promoters
at various places all over India

SUDARSHAN SAUR SHAKTI PVT. LTD.
35, Bhagya Nagar, Aurangabad - 431 001 (MS) INDIA
Ph.: 91-0240-2333491, 2331842, 2356197, 98230 51343
E-mail : sudarsh@sancharnet.in
http://www.sudarshansaur.com

वर्ष ४३ नवम्बर २००५ अंक ११

वैराग्य-शतकम्

सा रम्या नगरी महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्-
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उद्वृत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः।।४१।।

अन्वय – सा रम्या नगरी, सः महान् नृपतिः, च तस्य पार्श्वे तत् सामन्त-चक्रम, सा च विदग्ध-परिषत्, ताः च चन्द्र-बिम्ब-आननाः, सः च उद्-वृत्तः राजपुत्र-निवहः, ते बन्दिनः, ताः कथाः, सर्वं यस्य वशात् स्मृति-पथं अगात्, तस्मै कालाय नमः ।।

भावार्थ – वह मनोहर नगरी, वह महान् सम्राट्, उसे चारों ओर से घेरे हुए सामन्तवर्ग, उसके समीप रहनेवाले विद्वान् सलाहकारों की मण्डली, चन्द्रमा के समान मुखवाली वे सुन्दर स्त्रियाँ, उद्धत राजकुमारों की वह टोली, चारणों की वे प्रशंसापूर्ण उक्तियाँ – ये सभी जिसके वश में आकर मात्र स्मरण की वस्तुएँ रह गयी हैं, उस काल को हम नमस्कार करते हैं।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते ।
इत्थं नेयैः रजनिदिवसौ लोलयन् द्वाविवाक्षौ
कालः कल्यो भुवनफलके क्रीड़ति प्राणिशारैः।।४२।।

अन्वय – यत्र गृहे क्वचित्-अपि अनेकः अथ तत्र एकः तिष्ठति, यत्र अपि एकः तत्-अनु बहवः तत्र च अन्ते एकः अपि न । इत्थं कल्यः कालः भुवनफलके द्वौ-अक्षौ-इव रजनिदिवसौ लोलयन् नेयैः प्राणि-शारैः क्रीड़ति ।।

भावार्थ – जिस घर में कभी अनेक लोग रहते थे, वहाँ आज एक ही व्यक्ति निवास करता है। और जिस घर में एक आदमी रहता था, उसमें बहुत-से लोग हो गये तथा अन्त में कोई नहीं बचा। इसी प्रकार सबको निगलनेवाला काल इस संसार रूपी बिसात पर रात-दिन रूपी दो पासों को लुढ़काकर जीव रूपी गोटियों को चलाते हुए (चौपड़) खेल रहा है।

– भर्तृहरि

भजन-गीति

– १ –

(राग-पटदीप ताल-कहरवा)

हमारी यह विनती भगवान,
अग-जग में सुख-शान्ति विराजे, सबका हो कल्याण ।।

सदाचार फैले लोगों में, रहे न मति नश्वर भोगों में,
एक बार फिर से दुनिया में, सच्चा हो इनसान ।।

जाति-वर्ग के भेद शिथिल हों, समता औ सद्भाव सबल हों,
सबमें ईश्वर देख करें हम, सेवा औ सम्मान ।।

प्राणी त्रस्त मोह-माया से, भीत हो रहे निज छाया से,
चिदालोक फैलाओ जग में, दूर करो अज्ञान ।।

अर्पण हो यह जीवन अपना,
टूटे भव का झूठा सपना,
अन्त समय होकर 'विदेह' हम,
प्राप्त करें निर्वाण ।।

– २ –

(राग-भूपाली ताल-रूपक)

नाम जप सानन्द उनका ।
व्याप्त है सर्वत्र जग में,
सत्य-शिव-सौन्दर्य जिनका ।।

घोर है यह मोह माया,
तू भ्रमित होकर लुभाया,
भोग-सुख-ऐश्वर्य सबको
ले समझ, ज्यों फूस-तिनका ।।

नाम सब सामर्थ्यशाली,
राम, शिव, हरि, कृष्ण, काली,
तर गये जिनके भरोसे,
गज, अजामिल और गणिका ।।

पूर्ण होंगे दिन यहाँ के,
अलविदा होंगे जहाँ से,
अन्ततः पाकर परम गति,
दूर होगा खेद मन का ।।

– *विदेह*

शिक्षक और छात्र

स्वामी विवेकानन्द

(शिक्षा विषय पर अनेक मूल्यवान विचार स्वामीजी के सम्पूर्ण साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उन्हीं का बँगला भाषा में एक संकलन 'शिक्षा-प्रसंग' नाम से प्रकाशित हुआ है, जो कई दृष्टियों से बड़ा उपयोगी प्रतीत होता है। शिक्षकों तथा छात्रों – दोनों को ही उससे उक्त विषय में काफी नयी जानकारी मिल सकती है, यहाँ पर हम 'शिक्षा का आदर्श' शीर्षक के साथ क्रमश: उसी का प्रकाशन कर रहे हैं। – सं.)

शिशु में अनन्त शक्ति निहित है

शिक्षा का अर्थ मनुष्य के अन्दर उस देवत्व को अभिव्यक्त करना है, जो उसमें पहले से ही विद्यमान है, अत: बालकों को शिक्षा देते समय उन पर हमारा यथेष्ट विश्वास होना चाहिए। हमें यह विश्वास रखना होगा कि प्रत्येक बालक असीम दिव्य शक्ति का भण्डार है और हमारा प्रयास होगा कि उसमें प्रसुप्त ब्रह्म को जगा दें। बालकों को शिक्षा देते समय और भी एक बात याद रखने की यह है कि उन्हें मौलिक चिन्तन करने को उत्साहित करना होगा। यह मौलिकता का अभाव ही भारत की वर्तमान अवनति का कारण है। यदि इसी प्रकार बच्चों को शिक्षा दी जाय, तो वे लोग ठीक-ठीक मनुष्य बनेंगे और जीवन-संग्राम में स्वयं ही अपनी समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होंगे।[२२७] छोटे-से बच्चे में भावी मनुष्य की सारी सम्भावनाएँ निहित हैं। सभी प्रकार के भावी जीवन की सम्भावनाएँ बीजाणु में विद्यमान हैं।[२२८]

प्राचीन पद्धति – गुरुगृह में निवास

मेरा विश्वास है कि गुरु-गृहवास – गुरु के साक्षात् सम्पर्क में रहने से ही सच्ची शिक्षा होती है। गुरु के व्यक्तिगत जीवन के अभाव में शिक्षा नहीं हो सकती। अपने विश्वविद्यालयों को लीजिए। अपने पचास वर्ष के अस्तित्व में उन्होंने क्या किया? एक भी मौलिक व्यक्ति पैदा नहीं किया। वे केवल परीक्षा लेने की संस्थाएँ हैं। सबके कल्याण के लिए बलिदान के भाव का हमारे देश में अभी विकास नहीं हुआ है।[२२९] बचपन से ही किसी जाज्वल्यमान, उज्ज्वल चरित्रयुक्त तपस्वी महापुरुष के सान्निध्य में रहना चाहिए, ताकि उच्चतम ज्ञान का जीवन्त आदर्श सदैव दृष्टि के समक्ष बना रहे। 'झूठ बोलना पाप है' – केवल पढ़ लेने भर से कोई लाभ नहीं। हर बालक से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कराना होगा, तभी तो हृदय में श्रद्धा-भक्ति का उदय होगा। नहीं तो, जिसमें श्रद्धा-भक्ति नहीं, वह झूठ क्यों नहीं बोलेगा? हमारे देश में शिक्षादान का महान् कार्य सदैव त्यागी लोगों द्वारा ही होता रहा है। ... जब तक त्यागी लोगों ने अध्यापन किया था, तब तक भारत का कल्याण हुआ। ... इस देश में जब तक शिक्षादान का भार पुन: त्यागी लोगों को नहीं दिया जाता, तब तक भारत को दूसरे देशों के तलवे चाटने होंगे।[२३०]

बच्चों के लिए उपयोगी एक पुस्तक तक तो इस देश में नहीं है! ... बस यही पढ़ाते हो न – 'ईश्वर निराकर चैतन्य स्वरूप है', 'मोहन अति सुबोध बालक है' आदि-आदि! लेकिन इससे काम नहीं चलेगा। हमें भारतीय भाषाओं और साथ-ही-साथ अँग्रेजी में भी कुछ ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन करना होगा, जिनमें बहुत ही सरल और सीधी भाषा में रामायण, महाभारत तथा उपनिषदों की कथाओं का संग्रह हो, और फिर ये पुस्तकें बालकों को पढ़ने के लिये दी जायँ।[२३१]

हमें बच्चों के लिए बस इतना ही करना है कि वे अपने हाथ-पैर, आँख-कान, बुद्धि का समुचित उपयोग करना भर सीख लें और फिर सब आसान हो जायेगा। परन्तु इन सबका मूल है धर्म – वही मुख्य है। धर्म तो भात के समान है, शेष सारी वस्तुएँ कढ़ी और चटनी जैसी हैं। केवल कढ़ी या चटनी खाने से अपथ्य हो जाता है और केवल भात खाने से भी। हमारे शिक्षा-शास्त्री हमारे बच्चों को केवल तोता बना रहे हैं और रटा-रटाकर उनके मस्तिष्क में कई विषय ठूँसते जा रहे हैं।[२३२] और इसी कारण गुरुगृह-वास आदि चाहिये। आज हमें जरूरत है वेदान्तयुक्त पाश्चात्य विज्ञान की, ब्रह्मचर्य के आदर्श की और श्रद्धा तथा आत्मविश्वास की। दूसरी चीज जिसकी आवश्यकता है, वह है उस शिक्षा-पद्धति का उन्मूलन, जो मार-मारकर गधों को घोड़ा बनाना चाहती है।[२३३]

तुम लोग अपने उसी अति प्राचीन सनातन पथ से चलो, क्योंकि उस समय के शास्त्रों के हर एक शब्द में सबल, स्थिर और निष्कपट हृदय की छाप लगी हुई है; उसका हर एक स्वर अमोघ है। ... उस प्राचीन समय के भाव लाओ जब राष्ट्रीय शरीर में तेज और जीवन था। तुम फिर तेजस्वी बनो, उसी प्राचीन झरने का पानी पिओ – भारत को पुनर्जीवित करने का एकमात्र उपाय अब यही है।[२३४]

हर्बर्ट स्पेंसर ने शिक्षा की एक 'मठ-प्रथा' (monestery system) का उल्लेख किया है, जिसका यूरोप में प्रचार हुआ

और कुछ स्थानों में वह सफल भी हुई। इस प्रथा के अनुसार गाँववाले एक शिक्षक को रखते हैं, जिनका भार उसी गाँव के लोग उठाते हैं। हमारी ये प्राथमिक शालाएँ अति प्रारम्भिक होती हैं, क्योंकि हमारी प्रणाली बहुत सरल है। हर छात्र एक छोटा-सा आसन लाता है और लिखने के लिए ताड़ के पत्ते का उपयोग होता है। कागज महँगा पड़ता है, इसीलिये पहले ताड़ के पत्ते पर लिखता है। प्रत्येक लड़का अपना आसन बिछाकर बैठ जाता है और दावात तथा किताबें निकालकर लिखना आरम्भ कर देता है। थोड़ा अंकगणित, थोड़ा संस्कृत-व्याकरण, थोड़ी भाषा और थोड़ा बही-खाता, – प्राइमरी स्कूल में बस, इतना ही पढ़या जाता है।[२३५]

आजकल भी देश में कई जगह प्रचलित और विशेषत: संन्यासियों से सम्बन्धित भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति आधुनिक शिक्षा से बहुत भिन्न है। विद्यार्थियों को कोई शुल्क नहीं देना पड़ता था, क्योंकि सोचा ऐसा जाता था कि ज्ञान बहुत पवित्र है और किसी मनुष्य को इसे बेचना नहीं चाहिए। शिक्षा-दान नि:शुल्क तथा उदारतापूर्वक दिया जाना चाहिए। गुरुजन शिष्यों को नि:शुल्क भरती करते थे और इतना ही नहीं, बल्कि उनमें से अधिकांश अपने शिष्यों को भोजन और वस्त्र भी देते थे! इन शिक्षकों की सहायता के लिए रईस लोग विवाह-संस्कार, श्राद्ध-संस्कार आदि कई शुभ अवसरों पर इनको दान-दक्षिणा देते थे। ये शिक्षक कुछ विशेष प्रकार की दान-दक्षिणा के सर्वप्रथम अधिकारी समझे जाते थे और वे उसके बदले में अपने छात्रों का पालन-पोषण करते थे।[२३६] पूर्वकाल में छात्रगण हाथ में समिधा लिए गुरु के आश्रम में जाया करते थे। गुरु उनको अधिकारी समझने पर दीक्षा देकर वेद पढ़ाते थे और तन-मन-वाक्य को अनुशासित करने के व्रत के चिह्न-स्वरूप त्रिरावृत मुंज-मेखला उसकी कमर में बाँध देते थे।[२३७]

ज्ञान ही ज्ञान को जगाता है

सारा ज्ञान हमारे भीतर ही निहित है, पर उसे एक दूसरे ज्ञान के द्वारा जाग्रत करना पड़ता है। यद्यपि जानने की शक्ति हमारे भीतर ही विद्यमान है, तथापि उसे जगाना पड़ता है। और योगियों के मतानुसार इस ज्ञान का उन्मेष एक दूसरे ज्ञान के सहारे ही हो सकता है। अचेतन जड़ पदार्थ कभी ज्ञान का विकास नहीं करा सकता – केवल ज्ञान की शक्ति से ही ज्ञान का विकास होता है। हमारे अन्दर जो ज्ञान है, उसको जगाने के लिए ज्ञानी पुरुषों का सदैव हमारे साथ रहना आवश्यक है। इसी कारण इन गुरुओं की आवश्यकता सदा ही बनी रही है। जगत् कभी भी इन आचार्यों से रहित नहीं हुआ है।[२३८] मनुष्य का ज्ञान उसके अपने भीतर से उत्पन्न होता है – आजकल के दार्शनिकों का यह कथन सच है; सारा ज्ञान मनुष्य के भीतर ही विद्यमान है, पर उस ज्ञान के विकास के लिए कुछ अनुकूल परिस्थितियों की जरूरत होती है। गुरु के बिना हम कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।[२३९]

उपयुक्त बनो

विचारों की अद्भुत शक्ति को बहुत कम लोग समझ पाते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी गुफा में चला जाय और उसमें बन्द होकर, निर्जन में निरन्तर एकाग्रचित्त हो, किसी गहन तथा उदात्त विषय पर मनन करता रहे और उसी का आजन्म मनन करता हुआ अपने शरीर का भी त्याग कर दे, तो उसके विचार की तरंगें गुफा की दीवारों को भेदकर चारों ओर के परिवेश में फैल जाती हैं और अन्त में वे तरंगें सारी मनुष्य जाति में प्रवेश कर जाती हैं। **विचारों की यही अद्भुत शक्ति है। अत: अपने विचारों का दूसरों में प्रचार करने के लिए जल्दी नहीं करनी चाहिए।** पहले हमारे पास कुछ होना चाहिए, जिसे हम दूसरों को दे सकें। मनुष्य में ज्ञान का प्रसार केवल वही कर सकता है, जिसके पास देने को कुछ हो, क्योंकि शिक्षा देना केवल व्याख्यान देना नहीं है और न सिद्धान्तों को प्रदान करना ही – इसका अर्थ है सम्प्रेषण। ... अत: **सर्वप्रथम अपना चरित्र-गठन करो, यही सबसे प्रमुख कर्तव्य है।** पहले स्वयं को सत्य का ज्ञान होना चाहिए और उसके बाद ही तुम उसे अनेक लोगों को सिखा सकते हो, बल्कि वे लोग स्वयं उसे सीखने आयेंगे।[२४०] श्रीरामकृष्ण बहुधा एक दृष्टान्त देते थे – "जब कमल खिलता है, तो मधुमक्खियाँ स्वयं ही उसके पास मधु लेने आ जाती हैं; वैसे ही जब तुम्हारा चरित्ररूपी कमल पूर्ण रूप से खिल जायेगा, तब सैकड़ों लोग तुम्हारे पास शिक्षा लेने आयेंगे।" – यही जीवन की एक महान् शिक्षा है।[२४१] महत्त्व इसका नहीं कि क्या और किस भाषा में कहा जाता है, वरन् वक्ता का व्यक्तित्व ही कथन का प्राण है, यही उसमें शक्ति भर देता है।... जो व्यक्ति अपने शब्दों में अपनी सत्ता, अपना व्यक्तित्व ढाल सकता है, उसी की बातों का फल होता है, पर इसके लिये उसका महाशक्ति-सम्पन्न होना आवश्यक है। शिक्षा का अर्थ ही है आदान-प्रदान – शिक्षक देते हैं और छात्र ग्रहण करता है, परन्तु शिक्षक के पास कुछ देने को होना चाहिए और शिष्य में भी ग्रहणशीलता होना आवश्यक है।[२४२]

सहानुभूति-सम्पन्न बनो

सच्चे आचार्य वे ही हैं, जो अपने शिष्य की प्रवृत्ति के अनुसार अपनी सारी शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। सच्ची सहानुभूति के बिना हम कभी भी ठीक-ठीक शिक्षा नहीं दे सकते।[२४३] गुरु के साथ हमारा सम्बन्ध ठीक वैसा ही है, जैसा पूर्वज के साथ वंशज का। ... जिन देशों में इस प्रकार के गुरु-शिष्य-सम्बन्ध की उपेक्षा हुई है, वहाँ धर्मगुरु एक वक्ता मात्र रह गया है – वहाँ गुरु को मतलब रहता है अपनी

'दक्षिणा' से और शिष्य को मतलब रहता है गुरु के शब्दों से, जिन्हें वह अपने मस्तिष्क में ठूँस लेना चाहता है। और इसके बाद दोनों ही अपना-अपना रास्ता नापते हैं।[२४४]

हर व्यक्ति को चाहिये कि वह अन्य लोगों को ईश्वर का रूप माने और उनके साथ उसी के अनुसार अर्थात् ईश्वर के समान ही व्यवहार करे। वह उनकी किसी प्रकार से घृणा, निन्दा या किसी प्रकार से उनका अनिष्ट करने की चेष्टा न करे। और यह केवल संन्यासी का ही नहीं, अपितु सभी नर-नारियों का कर्तव्य है। दूसरे के अधिकार में हस्तक्षेप करने मत जाना, स्वयं को अपनी सीमा के भीतर रखो, इसी से सब ठीक हो जायेगा। उपदेशक का इतना ही कर्तव्य है कि वह मार्ग के बाधा-विघ्नों को हटा दे। ... असत् गुरु से तो ज्ञान-लाभ की कोई आशा ही नहीं है, उल्टे उनकी शिक्षा से विपत्ति की ही सम्भावना रहती है, ... असत् गुरु से शिक्षा-ग्रहण में कुछ बुरा सीख लेने की आशंका है।[२४५]

जीवन गढ़ने का उपाय

किसी व्यक्ति की श्रद्धा को नष्ट करने की चेष्टा न करना। यदि सम्भव हो तो उसे कुछ अधिक चीज दे दो। यदि हो सके तो वह जिस स्थान पर है, उससे उसे थोड़ा ऊपर उठा दो। इतना ही करो, परन्तु व्यक्ति के पास जो है, उसे नष्ट मत करो। ... वे ही सच्चे आचार्य हैं, जो सहज ही अपने छात्र की मनोभूमि में उतर सकते हैं और शिष्य की आत्मा के साथ अपनी आत्मा को एकरूप करके शिष्य की ही दृष्टि से देख सकते हैं, उसी के कानों से सुन सकते हैं और उसी के मस्तिष्क से समझ सकते हैं। ऐसे आचार्य ही सच्ची शिक्षा दे सकते हैं – दूसरे नहीं। जो लोग केवल दूसरों के भाव को नष्ट करने का प्रयास करते हैं, वे लोग कभी किसी भी प्रकार का उपकार नहीं कर सकते।[२४६]

जन-साधारण के सामने सकारात्मक आदर्श रखना होगा। नकारात्मक भावना मनुष्य को दुर्बल बना डालती है। देखते नहीं, जो माता-पिता दिन-रात बच्चों के लिखने-पढ़ने पर जोर देते रहते हैं, कहते हैं – 'इसका कुछ नहीं होगा, यह मूर्ख है, गधा है', आदि-आदि – उनके बच्चे प्राय: वैसे ही बन जाते हैं। बच्चों को अच्छा कहने से और प्रोत्साहन देने से समय आने पर वे स्वयं ही अच्छे बन जाते हैं। जो नियम बच्चों के लिए है, वही उन बड़ों के लिए भी है, जो भाव-राज्य के उच्च अवस्थाओं में शिशुओं की तरह हैं। यदि जीवन में सकारात्मक भाव दिये जा सकें, तो साधारण व्यक्ति भी मनुष्य बन जायेगा और अपने पैरों पर खड़ा होना सीख सकेगा। मनुष्य भाषा, साहित्य, दर्शन, कविता, शिल्प आदि अनेकानेक क्षेत्रों में जो प्रयत्न कर रहा है, उसमें वह अनेक गल्तियाँ करता है। उचित यह होगा कि हम उसे गल्तियाँ न बताकर, प्रगति के मार्ग पर धीरे-धीरे अग्रसर होने में सहायता दें। **भूलें दिखाने से लोगों की भावना को ठेस पहुँचती है और वे हतोत्साहित हो जाते हैं।** श्रीरामकृष्ण को हमने देखा है – हम जिन्हें त्याज्य मानते थे, उन्हें भी वे प्रोत्साहित करके उनके जीवन की गति को मोड़ देते थे। शिक्षा देने की उनकी प्रणाली बड़ी अद्भुत थी![२४७] मान लो किसी में दोष है, तो केवल गाली-गलौज से कुछ नहीं होगा; हमें उसकी जड़ में जाना होगा। पहले पता लगाओ कि दोष का कारण क्या है, फिर उस कारण को दूर करो और वह दोष अपने आप ही चला जायगा। केवल चिल्लाने से कोई लाभ नहीं होता, वरन् उससे हानि की अधिक सम्भावना रहती है।[२४८]

स्वभाव के अनुसार शिक्षा

हर मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरों से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। ... अत: मनुष्य को अपनी प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल जायँ, जो उसको उसी के भावों के अनुरूप मार्ग पर अग्रसर कराने में सहायक हों, तो वह व्यक्ति उन्नति करने में समर्थ होगा। उसको उन्हीं भावों के विकास की चेष्टा करनी होगी।[२४९] अत: शिष्यों की आवश्यकता के अनुसार उपदेशों में विविधता होना आवश्यक है। ... पिछले अनेक जन्मों के फलस्वरूप संस्कार गठित हुए हैं, अत: शिष्य की प्रवृत्ति के अनुसार उसे उपदेश दो। ... जो जहाँ पर है, उसे वहीं से ठेलकर आगे बढ़ाओ। ... किसी की स्वाभाविक प्रवृत्ति को पलट देने का नाम तक मत लो; इससे गुरु और शिष्य दोनों को क्षति पहुँचती है। जब तुम ज्ञान की शिक्षा देते हो, तो तुम्हें ज्ञानी होना होगा; और शिष्य की जो अवस्था है, तुम्हें मन-ही-मन ठीक वहीं पहुँचना होगा।[२५०]

तुम किसी का कल्याण कर सकते हो – इस धारणा को त्याग दो। जैसे पौधे के लिए जल, मिट्टी, वायु आदि पदार्थों को जुटा देने पर, पौधा अपनी प्रकृति के नियमानुसार स्वयं ही आवश्यक पदार्थों को ग्रहण कर लेता है और विकसित होता जाता है, उसी प्रकार दूसरों की उन्नति के साधन एकत्र करके उनका हित करो।[२५१] जब कभी देखो कि दूसरों की बातों से तुम कुछ शिक्षा प्राप्त कर रहे हो, तो समझ लो कि पूर्वजन्म में तुम्हें उस विषय की अनुभूति हुई थी; क्योंकि अनुभूति ही हमारी एकमात्र शिक्षक है।[२५२]

सेवा

बिल्कुल बचपन से ही बच्चों को बलवान बनाओ – उन्हें दुर्बलता अथवा किसी बाहरी अनुष्ठान की शिक्षा देने की जरूरत नहीं। वे तेजस्वी हों, अपने पैरों पर खड़े हो सकें – साहसी, सर्वजयी, सब कुछ सहनेवाले हो, पर सर्वप्रथम उन्हें आत्मा की महिमा की शिक्षा मिलनी चाहिए।[२५३] सभी लोगों

को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व की शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा। **स्वाधीनता ही उन्नति के लिए पहली आवश्यकता है।** यदि तुममें से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो अनुचित है, बहुत बड़ी गल्ती है। ... दूर रहो! अपनी समस्याएँ वे स्वयं ही हल कर लेंगे। ... अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम कौन होते हो? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस भी कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नहीं कि प्रत्येक आत्मा ही ईश्वर का रूप है? ... प्रत्येक नर-नारी को – सबको ईश्वर के रूप में देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें तो केवल सेवा करने का अधिकार है। ... यदि ईश्वर की कृपा से तुम उनकी किसी सन्तान की सेवा कर सके, तो धन्य हो जाओगे; अपने को कुछ बहुत बड़ा मत समझना। स्वयं को धन्य मानो कि दूसरों को नहीं, तुम्हें ही सेवा करने का अधिकार मिला।[२५४]

ॐ सह नाववतु। सह नौ भनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।। – हम लोगों ने जो कुछ सुना, वह खाये हुए अन्न के समान हमारी पुष्टि करे, उसके द्वारा हम लोगों में इस प्रकार का बल उत्पन्न हो कि हम दूसरों की सहायता कर सकें; हम – आचार्य और शिष्य – कभी आपस में विद्वेष न करें। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः! हरि ॐ।।[२५५]

"केवल पर्दाप्रथा के द्वारा क्या कभी स्त्रियों की सुरक्षा सम्भव है? अच्छी शिक्षा तथा देवभक्ति के प्रभाव से ही वे सुरक्षित रहती हैं।"[२५६] – *श्रीरामकृष्ण*

❖ (क्रमशः) ❖

सन्दर्भ-सूची –

२२७. युगनायक विवेकानन्द, प्रथम सं. १९९४, खण्ड ३, पृ. ६२; **२२८**. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९) खण्ड २, पृ. १२३; **२२९**. वही, खण्ड ४, पृ. २६२; **२३०**. खण्ड ८, पृ. २३१-३२; **२३१**. वही, खण्ड ८, पृ. २३३; **२३२**. वही, खण्ड ८, पृ. २२९; **२३३**. वही, खण्ड ८, पृ. २२९; **२३४**. वही, खण्ड ५, पृ. २३७; **२३५**. वही, खण्ड १, पृ. ३२०; **२३६**. वही, खण्ड ७, पृ. २४३-४४; **२३७**. वही, खण्ड ६, पृ. ३२; **२३८**. वही, खण्ड १, पृ. १३१-३२; **२३९**. वही, खण्ड १, पृ. १३२; **२४०**. वही, खण्ड ७, पृ. २५८; **२४१**. वही, खण्ड ७, पृ. २५८; **२४२**. वही, खण्ड ७, पृ. २५९; **२४३**. वही, खण्ड ७, पृ. २१६; **२४४**. वही, खण्ड ४, पृ. २४; **२४५**. वही, खण्ड ५, पृ. २८२-८३; **२४६**. वही, खण्ड ७, पृ. २६३-६४; **२४७**. वही, खण्ड ६, पृ. ११२; **२४८**. वही, खण्ड २, पृ. ७०; **२४९**. वही, खण्ड ५, पृ. २४९-५०; **२५०**. वही, खण्ड ७, पृ. ११५; **२५१**. वही, खण्ड ५, पृ. १४२; **२५२**. वही, खण्ड ७, पृ. ५७; **२५३**. वही, खण्ड ५, पृ. २९-३०; **२५४**. वही, खण्ड ५, पृ. १४१; **२५५**. वही, खण्ड ५, पृ. ५१; **२५६**. श्रीरामकृष्ण-लीला-प्रसंग, खण्ड १, (नवीन सं.) पृ. ७४

'जीवन-वीणा' के तीन सुर

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

– १ –

देश-प्रेम त्याग-बलिदान की सुभावना से
भारती के भाल का सुहाग बने जिन्दगी।

अघ-ओघ-अज्ञता का खाण्डव जला दे द्रुत,
ऐसी बरिबण्ड चण्ड आग बने जिन्दगी।

'मधुरेश' मानवीय मंगल बिहान हेतु
ऊषा के समान रम्य राग बने जिन्दगी।

कर्म-भक्ति-ज्ञान की त्रिवेणी नित्य बहे जहाँ
ऐसा शुचि संगम प्रयाग बने जिन्दगी।

– २ –

धन होगा, धाम होंगे, साधन प्रकाम होंगे
प्रकृति भले ही नित्य मन हरषायेगी।

बल का न पार होगा, सफल रहेंगे काम,
कीर्ति भी भले ही तीनों लोक तक जायेगी।

'मधुरेश' भले ही अशेष छबिराशि नित्य
रूप को अनूप रंग-ढंग से सजायेगी।

किन्तु यदि चाप अभिमान का न होगा भंग,
जिन्दगी की सीता कभी राम को न पायेगी

– ३ –

मेरे मन ! सावधान, जीवन है नाशवान
देह-द्रव्य-मान में ही मत अभिमान कर।

मानव-शरीर यह तुझको मिला जो आज,
इसके महत्त्व से भी जान-पहचान कर।

रूप में न फूल के लुभाया रहे रात दिन,
सार को विचार और उसका ही ध्यान कर।

हो न गतभान, बलवान काल को तू जान,
'मधुरेश' मधुप-समान मधु-पान कर।

श्रीराम-वाल्मीकि-संवाद (४/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(आश्रम द्वारा १९९६-९७ में आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती-समारोहों के समय पण्डितजी ने उपरोक्त विषय पर जो प्रवचन दिये थे, यह उसी का अनुलेख है। टेप से इसे लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है। – सं.)

भगवान श्रीराम महर्षि से प्रश्न करते हैं – मैं कहाँ निवास करूँ? महर्षि उनके रहने के लिए चौदह स्थानों के रूप में चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि आप इन भक्तों के हृदय में निवास करें। सर्वप्रथम उन्होंने रामकथा या रामायण के श्रोताओं के सन्दर्भ में प्रभु से निवेदन किया। इन श्रोताओं के कान समुद्र के समान हैं और आपकी कथाएँ विविध नदियों के समान हैं। नदियाँ निरन्तर समुद्र में जाकर विलीन होती रहती हैं, परन्तु आज तक समुद्र ने यह नहीं कहा कि बस अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। ठीक इसी प्रकार निरन्तर कथा-श्रवण करते हुए भी, जो लोग तृप्त नहीं होते, आप उनके हृदय में निवास करें।

यहाँ पर दिया गया विविध नदियों का सूत्र बड़े महत्त्व का और सांकेतिक है। यदि आप कथा को जीवन में साधना के रूप में ही स्वीकार करें तो भी ठीक है, सोचें कि इसके द्वारा साधन-पथ में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी, तो भी इसमें कोई हानि नहीं, परन्तु वस्तुत: सत्य तो यह है कि **रामकथा साध्य है, यह भगवान का शब्दमय विग्रह है।** और भगवान यदि हृदय में आ जाते हैं, तो सभी गुण अन्त:करण में प्रविष्ट हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में एक बड़ा सुन्दर सूत्र दिया गया है। भगवान ने सोचा कि जीव के हृदय में बैठने हेतु मैं कौन-सा मार्ग चुनूँ। उन्हें लगा कि इन सारे मार्गों में, जो कर्णरंध्र बनाये हैं, उनके द्वारा मैं अपना शब्दमय रूप बनाकर, कथा के रूप में स्वयं ही भक्त के हृदय में बैठ जाऊँ –

प्रविष्ट कर्णरन्ध्रेण स्वनाम-भाव-सरोरुहम्।

यहाँ एक बड़ी अनोखी बात कही गयी – यदि आप किसी व्यक्ति को निमंत्रण देते हैं, तो स्वाभाविक है कि आप उसके निवास के लिए, उसके सत्कार के लिए अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ करते हैं। पर यदि कोई ऐसा अतिथि हो कि जिसके आने का कोई निश्चय नहीं है और वह बिना निमंत्रण के ही आ गया हो, तो वह तो यह आग्रह नहीं कर सकता कि मेरे सत्कार के लिए ऐसी-ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं की गई। जो लोग भगवान को निमंत्रित करते हैं, उन्हें इसके साथ ही उनके निवास के उपयुक्त स्थान का निर्माण भी करना चाहिए। आप इसे यों देखें – प्रभु विश्वामित्र के साथ जनकपुर जाते हैं। महर्षि विश्वामित्र प्रभु को लेकर सीधे जनकजी के महल में नहीं पहुँचे। नगर के बाहर एक अमराई – आम का बाग था। महर्षि विश्वामित्र ने कहा – रामभद्र, मुझे लगता है कि यह स्थान सब प्रकार से उपयुक्त है। और यदि तुम्हें भी ठीक लगे, तो हम लोग यहीं निवास करें –

देखि अनूप एक अँवराई।
सब सुपास सब भाँति सुहाई।।
कौसिक कहेउ मोर मनु माना।
इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना।। १/२१३/५-६

प्रभु विनम्रता के साथ बोले – "गुरुदेव, आपको जो स्थान प्रिय है, उसमें मुझे-अप्रिय का प्रश्न ही कहाँ है।" और वे लोग वहीं निवास करते हैं।

यहाँ संकेत-सूत्र यह है कि श्रीरामचन्द्र जनकपुर निमंत्रित होकर नहीं आए। बिना निमंत्रण के ही चले आए थे। जहाँ भक्ति है, वहाँ भगवान को निमंत्रण देने की आवश्यकता ही क्या है? जैसे कमल कभी भौंरे को निमंत्रण नहीं भेजता कि तुम आकर मेरे रस का आस्वादन करो। भौंरा तो स्वत: ही बिना निमंत्रण के आ जाता है, वैसे ही जहाँ भक्ति हो, वहाँ वे स्वत: चले आते हैं। वे जनकपुर में पधारे हुए हैं।

अयोध्या में भगवान साधना की पराकाष्ठा में आए। वह एक पक्ष है। अयोध्या में श्रीराम का जन्म साधना का अनुपम तत्त्व है। वहाँ कितनी कठिनाई से, कितनी साधना के बाद और यज्ञ के माध्यम से भगवान का प्राकट्य होता है, परन्तु जनकपुर में ऐसी बात नहीं है। वहाँ तो महर्षि विश्वामित्र के साथ प्रभु स्वयं आए हुए हैं। और महर्षि कितने चतुर हैं! महर्षि को निमंत्रण था, उन्हें अधिकार था कि वे राजमहल पहुँचते और जनक को सूचना दी जाती। लेकिन महर्षि विश्वामित्र जितने बड़े तत्त्वज्ञ हैं, उतने ही बड़े नीति-कुशल भी हैं। क्योंकि पूर्व जीवन में वे एक श्रेष्ठ राजा थे और राज्य की नीतियों आदि का उनको इतना ज्ञान था कि वे यथावसर जहाँ जैसा होना चाहिए, वैसा ही करते थे। और इसीलिए वे अमराई देखकर कहते हैं कि यहीं ठहरना उचित होगा।

भगवान राम वहाँ बड़ी प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। महर्षि विश्वामित्र के आगमन की सूचना जनकजी को मिलती

है। जनकजी सपरिवार, मंत्री, विशिष्ट नागरिक, सम्बन्धी, गुरुजन आदि को लेकर स्वागत करने आते हैं। मिलन होता है और उसके बाद फिर वही सूत्र! विश्वामित्रजी ने यह नहीं कहा कि यह आम का बगीचा बड़ा अच्छा है, हमें यही रहने दें। अब महाराज जनक ने निवेदन किया – महाराज, आप कृपा करके नगर में पधारें और महल में निवास करें।

महर्षि के लिए अमराई और महल – दोनों में कोई अन्तर नहीं है। और प्रभु के लिए भी उसका कोई अर्थ नहीं है। पर गोस्वामीजी लिखते हैं – जब महाराजा जनक ने निर्णय किया कि प्रभु को कहाँ ठहराया जाय, तो शब्द हैं – 'सुन्दर सदन'। एक तो यह कि वह निवास-स्थान सुन्दर था। उसके साथ-साथ दूसरा वाक्य और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। महाराज जनक ने भगवान श्रीराम को जिस स्थान पर ठहराया, उसकी दूसरी विशेषता क्या है? उस भवन की रचना ऐसी थी कि प्रत्येक ऋतु में वह समान रूप से सुखद है –

सुन्दर सदनु सुखद सब काला। १/२१७/७

कई भवन ऐसे बने होते हैं कि एक ऋतु में उसमें रहने में सुख प्राप्त होता है, पर दूसरी ऋतु में उसमें अच्छा नहीं लगता। कोई ग्रीष्म ऋतु के लिए उपयुक्त स्थान होता है, कोई वर्षा के लिए, कोई शीत के लिए। इसलिए जिनके पास साधन होते हैं, वे अलग-अलग ऋतुओं के लिए भी अलग-अलग स्थानों का निर्माण करते हैं। परन्तु वह भवन ऐसा था, जो प्रत्येक ऋतु में समान रूप से सुखद था।

तहँ बासु लै दीन्ह भुआला।। १/२१७/७

यहाँ 'लै' शब्द का अर्थ यह है – लगता है उन्होंने किसी से माँगकर लिया। 'माँगकर लिया' में सांकेतिक तात्पर्य यह है कि उन्हें लगा कि भौतिक अर्थों में यदि श्रीराम को चक्रवर्ती सम्राट् का पुत्र मानें, तो भी वे बड़े सम्मान के पात्र हैं और विचार के द्वारा तो वे मन-ही-मन समझ गये हैं कि ब्रह्म ही वेष बनाकर आया है। तो उसके निवास के लिए 'सुन्दर सदन' मानो एक सांकेतिक शब्द है। जब गोस्वामीजी ने जनकजी के नगर तथा उसकी विशेषता का वर्णन करते हुए बताया कि उसमें राजा से लेकर सैनिक तक का भवन एक जैसा था। बड़ा विचित्र वर्णन है –

सूर सचिव सेनप बहुतेरे।
नृपगृह सरिस सदन सब केरे।। १/२१४/३

समत्व की पराकाष्ठा है। विचार में समत्व सरल है, पर व्यवहार में समत्व बड़ा कठिन है। परन्तु महाराज जनक ने अपने राज्य में विचार में ही नहीं, व्यवहार में भी समत्व का प्रयास किया था। सबके लिए समान भवन की रचना की थी। पर जब पूछा गया कि जनकनन्दिनी सीता जहाँ रहती हैं, वह स्थान क्या कुछ विलक्षण है? तो उन्होंने कहा –

सिय निवास सुन्दर सदन।। १/२१३

यह सुन्दर शब्द रामायण का एक तात्त्विक और सांकेतिक शब्द है। साधारण अर्थ में हम किसी व्यक्ति की कृति को या रूप को देखकर उसको सुन्दर संज्ञा देते हैं – यह युवती सुन्दर है, यह युवक सुन्दर है, आदि आदि; परन्तु रामायण में सुन्दर शब्द बड़े महत्व का है, बड़े ही दूरगामी अर्थों वाला है। मानस में जिन सात काण्डों का वर्णन है, उनमें एक का नाम ही सुन्दर-काण्ड है। इसी से आप समझ सकते हैं कि सुन्दर शब्द मानस के सन्दर्भ में कितने महत्त्व का और कितना सांकेतिक है। बाल-काण्ड में भगवान का बाल-चरित्र है, अतः उसका नामकरण भी उचित है। अयोध्या-काण्ड में अयोध्या की घटना है। अरण्य-काण्ड में वन की घटना है। किष्किन्धा-काण्ड में किष्किन्धा-पुरी से जुड़ी हुई घटना है। लंका-काण्ड में लंका से जुड़ी हुई घटना है और उत्तर-काण्ड में समस्त प्रश्नों के समाधान और उत्तर हैं।

परन्तु एक काण्ड का नाम किसी नगर या किसी व्यक्ति से न जोड़ करके, उसे सुन्दर-काण्ड कहा गया, तो उसका तात्पर्य यह था कि वस्तुतः मानस में सौन्दर्य को देखने की दृष्टि और सौन्दर्य का अर्थ बताने के लिए ही इस काण्ड की रचना हुई है। और सौन्दर्य को देखने की भी दो दृष्टियाँ हैं। एक है रावण की दृष्टि – सुन्दरता के प्रति उसका आकर्षण बड़ा विलक्षण है। रामायण में रावण के चरित्र के वर्णन में आप पढ़ते हैं – वह जब भी सुनता है कि किसी जाति, किसी देश या किसी प्रान्त में कोई सुन्दरी स्त्री है, तो वह अपने मंत्री या सेनापति से कहता है – जाकर उस व्यक्ति से कहो कि वह कन्या लंकेश्वर के राजभवन में ही रहने के योग्य है, अतः अपनी कन्या मुझे अर्पित करे –

देव जच्छ गन्धर्ब नर
किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल
बहु सुन्दर बर नारि।। १/१८२/ख

संसार में जितनी भी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ हों, वे सब लंका में ही हों, उसके महल में ही हों – सौन्दर्य के प्रति रावण की यह दृष्टि एक दृष्टिकोण है। सुन्दर-काण्ड से जुड़े हुए 'सुन्दर' शब्द और बाल-काण्ड में विदेहनगर में 'सुन्दर' शब्द मानो दो अलग-अलग दृष्टिकोणों की ओर इंगित करते हैं। देहनगर है लंका। **देहनगर में सुन्दरता की परिभाषा एक होती है और विदेहनगर में सुन्दरता की परिभाषा दूसरी होती है।** देहनगर की सुन्दरता और विदेहनगर की सुन्दरता – इन दोनों का निर्णय सुन्दर-काण्ड में होता है। सुन्दर-काण्ड में जब सूर्पणखा ने वर्णन किया कि अयोध्या के राजकुमारों ने मेरा अपमान किया, तो उसने सोचा कि इसे सुनकर रावण बड़ा उत्तेजित होगा कि मेरी बहन का इतना अपमान किया; परन्तु वह बहुत निकट से रावण की दुर्बलता

को भी जानती है, इसलिए साथ ही एक बात और भी जोड़ देती है – जानते हो, अयोध्या के राजकुमारों के साथ एक ऐसी सुन्दर रमणी है कि उसके जैसा विश्व में कोई नहीं है। इसमें व्यंग्य यहा था कि तुम समझते हो कि तुमने सुन्दरता का संग्रह कर लिया है, पर सर्वश्रेष्ठ सुन्दरता तो तुम्हारे पास नहीं है। वह रावण में काम और क्रोध – दोनों को जगाना चाहती है। मेरी नाक काट दी – सुनकर क्रोध आयेगा और सीता की सुन्दरता का वर्णन सुनकर उसमें काम का उद्रेक होगा। वैसे श्रीराम के समक्ष सूर्पणखा ने सीताजी को जरा भी सुन्दर नहीं माना था। उसने तो श्रीराम के सामने सीताजी की उपेक्षा करते हुए कह दिया था – मैंने अपने योग्य सुन्दर पति पाने के लिए सारे ब्रह्माण्ड को ढूढ़ डाला पर कोई मिला नहीं, इसीलिए मैंने अब तक विवाह नहीं किया। यद्यपि तुम भी मेरे बराबरी के सुन्दर तो नहीं हो, तो भी तुम्हें देखकर मेरा मन कुछ मान गया है –

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं ।
देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ।।
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी ।
मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।। ३/१७/९-१०

उसे तो इसी बात की चिन्ता लगी हुई है और निश्चय था कि मैं लंकेश्वर की बहन हूँ, अपने को सुन्दर रूप में ही उसने प्रस्तुत किया था कि विवाह तो हो ही जायेगा। यदि उसे संशय होता, तो आती ही नहीं, पर उसको भविष्य की चिन्ता भी हुई कि विवाह होने के बाद झगड़ा भी अवश्य होगा। सूर्पणखा झगड़े की ही तो कल्पना कर सकती थी। विवाह होगा, तो झगड़ा होगा। और उसे लगता है कि झगड़े में यह राजकुमार कहेगा कि मैने तुमसे विवाह करने की चेष्टा थोड़े ही की थी। तुम्हीं तो चलकर आई थी। लोगों को ऐसा ही बोलने का अभ्यास होता है। उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं यदि तुमसे विवाह का प्रस्ताव कर रही हूँ, तो इससे यह न समझ लेना कि तुम मुझसे अधिक सुन्दर हो। पर दूसरा कोई नहीं है, तो मैंने मान लिया कि ठीक है, तुम्हीं मेरे योग्य हो। और तब स्पष्ट कह दिया – लगता है कि ब्रह्मा ने तुम्हारा निर्माण मेरे ही लिए किया है –

यह सँजोग बिधि रचा बिचारी । ३/१७/८

प्रभु ने जब यह वाक्य सुना, तो सूर्पणखा की ओर नहीं, जनक-नन्दिनी सीताजी की ओर देखा। और उनके इस देखने में न जाने कितने संकेत थे? एक तो यही था कि जब तुमने अपने आपको श्रेष्ठ सुन्दरी कहा, तो इन्हें देखने के बाद कहा या बिना देखे ही कह दिया? इधर भी तुमने दृष्टि डाली या नहीं। तो एक और जहाँ विदेहनगर का सौन्दर्य श्री रामभद्र के साथ है और दूसरा वह देहनगर लंका का सुन्दर वेष, जिसके द्वारा सूर्पणखा प्रभु को आकृष्ट करना चाहती है। अत: वहाँ तो वह यह नहीं मानती थी कि सीताजी मुझसे सुन्दर है। पर रावण से कहा कि वह इतनी सुन्दरी है कि सौ करोड़ रति को भी उसके ऊपर न्यौछावर किया जा सकता है –

रति सतकोटि तासु बलिहारी ।। ३/२२/९

उसे मानो उत्तेजित करने की चेष्टा करते हुए कहती है कि विश्व के सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को तो तुमने प्राप्त ही नहीं किया। इसीलिए अब सूर्पणखा का अपमान केन्द्र में नहीं रहा, बल्कि सीताजी का सौन्दर्य केन्द्र में आ गया।

इसका परिचय कैसे मिला? जब खरदूषण और त्रिसिरा उत्तेजित होकर सैन्य सहित रामभद्र से बदला लेने आए, तो फिर सौन्दर्य का एक दृश्य दिखाई दिया। सेना ने जब श्रीराम की ओर देखा, तो उनकी सुन्दरता का ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा कि सारे योद्धा स्तब्ध हो गये। उनके हाथ के धनुष रुक गये, तलवार रुक गये, अस्त्र-शस्त्र सब रुक गये –

थकित भई रजनीचर धारी ।। ३/१९/१

खर-दूषण ने देखा, तो उसकी भी वही दशा हुई। इतना सुन्दर विश्व में कोई हो सकता है क्या? इतना आकर्षण किसी में हो सकता है? उसने अपने मंत्री को बुलाया और उनसे कहा कि मैंने न जाने कितने योद्धाओं का, सुन्दर कहे जानेवाले जाने-माने व्यक्तियों का वध किया, पर इन राजकुमारों-जैसी सुन्दरता तो मैंने कभी नहीं देखी –

देखी नहिं असि सुंदरताई । ३/१९/४

यहाँ वह सुन्दर शब्द का एक अर्थ ले रहा है और उनके लिए अपनी बहन का बदला गौण हो गया। वे बोले – भले ही इन्होंने हमारी बहन को विरूप कर दिया, पर वे वध करने योग्य नहीं हैं, हम इन पर प्रहार नहीं करना चाहते –

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा ।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ।। ३/१९/५

लगा कि बड़े ऊँचे विचार हैं, ये लोग सौन्दर्य के बड़े प्रशंसक हैं, परन्तु ऊँची बात के बाद ही वे निम्न धरातल पर आ गये। कहा – बस, एक उपाय है। राम इतने सुन्दर हैं, तो उन्हें मारना नहीं चाहिए और उन्होंने सन्देश भेजा – अपनी स्त्री को तत्काल दे दो और जीते-जी घर लौट जाओ। इसके बाद श्रीराम द्वारा चुनौती दिये जाने पर जब खर-दूषण और त्रिसिरा अपनी सेना लेकर उन पर आक्रमण करने आगे बढ़े, तब भगवान लक्ष्मण को आदेश देते हैं – तुम जनक-नन्दिनी को लेकर पर्वत की कन्दरा में चले जाओ। वहाँ तुम इनकी रक्षा करो। इन राक्षसों का वध हो जाने पर बाहर आना –

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर ।
आवा निसिचर कटकु भयंकर ।।
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी ।
चले सहित श्री सर धनु पानी ।। ३/१८/११-१२

लक्ष्मणजी जनक-नन्दिनी को साथ लेकर हाथ में धनुष-बाण लिये वहाँ पर प्रहरी के रूप में सतर्क भाव से खड़े हैं कि कहीं खर-दूषण-त्रिसिरा और राक्षसों की दृष्टि सीताजी पर न पड़ जाय। उसका तात्त्विक अभिप्राय यह था कि **विदेह-नन्दिनी का सौन्दर्य देखने के लिए जो दृष्टि चाहिए, वह इन राक्षसों के पास नहीं है**। लेकिन खर-दूषण कहते हैं कि अब तो बस एक ही उपाय है – एक शर्त पर हम समझौता करने के लिए तैयार हैं। इस राजकुमार से जाकर कहो कि अपनी जिस पत्नी को उसने छिपा दिया है, उसे हमें दे दे और वापस लौट जाय। हम नहीं मारेंगे। दोनों भाई जीवित लौट जायँ। लेकिन बदले में उन्हें अपनी पत्नी को देना होगा –

देहु तुरत निज नारि दुराई ।
जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ।। ३/१९/६

सौन्दर्य के प्रति खर-दूषण और त्रिसिरा की यह दृष्टि लंका की दृष्टि है। दूसरी – भक्त की दृष्टि में भी सौन्दर्य की उपलब्धि के लिए आकर्षण है कि राम सुन्दर हैं, अत: हम उनकी भक्ति करें। पर लंका की दृष्टि यह है कि राम बड़े सुन्दर हैं, तो उनकी पत्नी और भी सुन्दरी होंगी, उसे वे हमें दे दें – यह कलुषित दृष्टि है और इस दृष्टि का परिणाम क्या हुआ?

खर-दूषण के मंत्री ने जाकर श्रीराम से कहा – "हमारे उदार महाराज ने आप पर बड़ी कृपा की है। आपने बहुत बड़ा अपराध किया है, लेकिन उन्होंने आपको जीवित लौट जाने की सुविधा दी है। केवल आप अपनी पत्नी को उन्हें दे दीजिए और शान्तिपूर्वक लौट जाइए।" भगवान मुस्कुराए। बोले – "तुम जानते हो? हमारा जन्म क्षत्रिय जाति में हुआ है। और क्षत्रिय जाति तो मृगया – शिकार के लिए प्रसिद्ध है। तुम जाकर उनसे कह दो कि हम तो वन में शिकार खेलने के लिए ही आए हुए हैं। परन्तु हम साधारण पशुओं का नहीं, तुम जैसे दुष्ट मृगों का शिकार करते हैं" –

हम छत्री मृगया बन करहीं ।
तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ।। ३/१९/९

रामकथा की जो विविध नदियों से उपमा दी गयी, इस सन्दर्भ में मुझे स्मरण आता है कि प्रारम्भ में जब प्रभु ने मुझसे प्रवचन का कार्य लेना शुरू किया था, और संयोग यह है कि उसका श्रीगणेश छत्तीसगढ़ की भूमि से ही हुआ था, तो कहा जाने लगा कि ये तो अपनी विद्वत्ता के द्वारा मानस में जो नहीं है, उसे भी बलात् लाद देते हैं। यह इनकी बुद्धि का कौशल है। रामायण तो एक सीधा-सादा ग्रन्थ है। और वह विवाद जब चल रहा था, तभी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आमंत्रण आया। वहाँ और अन्य स्थानों पर जब मैं गया, तो सुनने में आया कि गीता ही विद्वानों का ग्रन्थ है। मानस तो साधारण लोगों के लिये है, क्योंकि साधारणतया उत्तर प्रदेश के लोग जहाँ भी जाते हैं, वहाँ रामायण गाना उनकी दिनचर्या का एक अंग है। तो ऐसा मान लिया गया कि गीता तात्त्विक और मानस केवल साधारण लोगों का ग्रन्थ है।

प्रवचन का यह कार्य कोई मेरे प्रयत्न का परिणाम तो था नहीं। मैंने कहा – आपको आरोपित लगता होगा, पर बात ऐसी नहीं है। यदि मैंने चिन्तन किया होता, बुद्धि से सोचा होता तो मान लेता कि यह आरोपित हो सकता है। मैंने तो इसमें कभी अपनी बुद्धि ही नहीं लगायी, कभी सोचा ही नहीं, कभी परिश्रम ही नहीं किया। परन्तु जो कथा हो रही है, वह सत्य है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं। और इसलिए सन्देह नहीं कि वह मेरे द्वारा नहीं कहा जा रहा है। मैं माध्यम हो सकता हूँ, पर यह मेरे चिन्तन या परिश्रम से नहीं हो रहा है।

तो गोस्वामीजी कहते हैं कि यह रामकथा मानो नदियाँ हैं। और रामकथा में क्या-क्या है? आप रामकथा को पढ़ें, तो ऐसा लगेगा कि सचमुच ही ऐसा कोई भी साधन-पथ नहीं है, जिसका निर्देश या संकेत इसमें न मिले। आप रामकथा को सहज रूप में लें, बहुत अच्छा ! आप उसमें इतिहास का आनन्द लें, तो भी कोई नहीं रोकता। आप गोस्वामीजी के इस ग्रन्थ को खूब आनन्द से गाइये, यह बड़ा सुखद है। आप मानस की चौपाइयों के सरल अर्थ को पढ़िये, वह भी बड़ा अच्छा है, परन्तु मत भूलिए कि मानस में गोस्वामीजी ने गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, गोदावरी, ताप्ती, सोन – सभी नदियों का प्रतीकात्मक नाम लिया है।

किसी ने कहा – महाराज, आजकल योग्य गुरु ही नहीं मिलते। ऐसा माननेवाले सोच लेते होंगे कि योग्य शिष्य तो उपलब्ध हैं, पर योग्य गुरु नहीं हैं। उन्हें अपनी योग्यता पर तो विश्वास है, पर गुरुओं की योग्यता पर विश्वास नहीं है। प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्दजी बड़े विनोदी और विचित्र उत्तर देनेवाले थे। मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य मिला था। एक बड़े धनी सज्जन आए और स्वामी शरणानन्दजी को प्रणाम करके उनसे पूछा – महाराज, पहले जैसे महात्मा होते थे, वैसे आजकल क्यों नहीं होते?

कितनी असभ्यता है। आप एक महात्मा के पास आए हुए हैं और आप उनको प्रणाम करके उन्हीं से पूछते हैं कि पहले जैसे महात्मा क्यों नहीं होते? यदि कोई क्रोधी महात्मा होते, तो भड़क उठते कि मैं महात्मा नहीं, तो क्या दुरात्मा हूँ? पर वे बोले – भाई, यह तो बड़ा स्वाभाविक है, पहले जो महात्मा होते थे, वे तुम जैसे बड़े धनी लोगों के घरों से, भोगों को भोगकर, सन्तुष्ट होकर साधु-महात्मा बन जाते थे। पर अब तुम लोगों ने तो अपने घरों से महात्मा निकालने बन्द कर दिये हैं, तो हम जैसे नालायक ही महात्मा बन गये हैं।

इसमें व्यंग्य मानो यह था कि तुम्हें महात्मा भी चाहिए, तो दूसरे के घर से चाहिए। बड़े त्यागी तब हैं, जब आपके घर से नहीं, दूसरे के घर से निकलें। यह मानो एक

विरोधाभास है। किसी ने गोस्वामीजी से भी पूछा – महाराज, गुरु कैसे मिलें? वे बोले – गुरु सामने ही तो हैं। सिख धर्म में कहते हैं न – 'गुरु-ग्रन्थ-साहब'। गोस्वामीजी ने कहा – यह ग्रन्थ भी 'गुरु-ग्रन्थ-साहब' हैं। अलग-अलग सम्प्रदायों के अलग-अलग गुरु होते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि **भगवान राम की कथा, भगवान राम का चरित्र – इससे बढ़कर कोई गुरु नहीं है**। व्यक्ति-गुरु नहीं है, तो चिन्ता की कोई बात नहीं! आप रामायण की कथा को ले लीजिए, प्रभु का चरित्र ले लीजिए। – पर महाराज, ये किस मार्ग के गुरु हैं? हमें यह निर्णय करना होगा कि ये हमारे लिए अनुकूल हैं या नहीं? तो कहते हैं – यदि आप ज्ञानमार्ग के अनुयाई हैं तो यह ज्ञानमय है; यदि आप योगमार्ग के अनुयाई हैं तो यह योगमय है; यदि आप वैराग्य-मार्ग के पथिक हैं तो यह वैराग्यमय है और यदि आप मानस-रोगों से संत्रस्त हैं, तो यह उन विकारों को मिटानेवाला महान् वैद्य है –

सदगुर ग्यान बिराग जोग के।
बिबुध बैद भव भीम रोग के ।। १/३२/३

सद्‌गुरु को ही उत्तर-काण्ड में वैद्य बताया गया है। यदि आपको बहिरंग व्यक्ति के गुरुत्व में श्रद्धा न हो, तो भी चिन्ता की बात नहीं है। यदि आप भगवान राम के चरित्र को पढ़ेंगे, तो उसमें आपको ज्ञान का चरम तत्त्व, योग, वैराग्य – सब मिलेगा और भक्ति का तो वह सर्वस्व है ही।

तो प्रारम्भ में जो विरोध हुआ, अब तो प्रभु की कृपा से कुछ थोड़ा-सा छुट-पुट ही रह गया है। अधिकांश लोग इन विचारों को स्वीकार करने लगे हैं। ये मेरे विचार तो हैं नहीं, पर हाँ माध्यम मैं अवश्य बना। उसमें तत्त्व यह है कि आप इन प्रसंगों को इस तरह से आगे देखें, तो ठीक होगा।

तो गोस्वामीजी कहते हैं कि भगवान राम सीताजी को उन राक्षसों के सामने नहीं आने देते, छिपा देते हैं। लक्ष्मणजी से कहते हैं – तुम इनकी रक्षा करो। और यही संकेत आपको उस समय भी मिलेगा, जब प्रभु मायामृग के पीछे जाते हैं। तब भी वे उन्हीं को आदेश देते हैं – लक्ष्मण, मैं जा रहा हूँ, लेकिन इस वन में चारों ओर राक्षस विचरण कर रहे हैं, अतः मैं आदेश देता हूँ कि तुम सीताजी की रक्षा करो –

सीता केरि करेहु रखवारी।
बुधि बिबेक बल समय बिचारी ।। ३/२७/९

लक्ष्मणजी की भूमिका क्या है? वे सीताजी के रक्षक हैं और उस रक्षक के सन्दर्भ में लक्ष्मणजी मूर्तिमान वैराग्य हैं –

सदगुरु ग्यान बिराग जोग के ।। १/३१/३

वैराग्य की भूमिका क्या है? गोस्वामीजी कहते हैं – **भक्ति तभी सुरक्षित रहेगी, जब वैराग्य होगा**। वैराग्य है, तब तक भक्ति की रक्षा है और वैराग्य के अभाव में भक्ति सुरक्षित नहीं रह सकती। भले ही बाद में उनको उस कष्ट से बचाया जाय। बाद में जब लक्ष्मणजी जनक-नन्दिनी से दूर चले गये, तभी उनका हरण हो गया और जहाँ लक्ष्मणजी जनक-नन्दिनी की रक्षा में रहे, वहाँ वे पूरी तरह सुरक्षित रहीं।

वैराग्य क्यों महत्त्वपूर्ण है? चित्रों में आपने देखा होगा कि प्राचीनकाल के योद्धा ढाल-तलवार लेकर लड़ा करते थे। तलवार आक्रमण के लिये होता था और ढाल रक्षा के लिये। जब दोनों योद्धा एक-दूसरे पर आक्रमण करेंगे, तो एक हाथ से वे आक्रमण करते थे और दूसरे हाथ से ढाल को आगे रखते थे कि अपने ऊपर होनेवाले प्रहार को रोक सकें। यदि आप जीतना चाहते हैं और यह जानना चाहते हैं कि जीतकर हमें किसे पाना है, तो आपको उत्तर-काण्ड में जाना होगा। वहाँ उन्होंने भक्ति को तीन रूप दिये – भक्ति अमृत है, भक्ति मणि है और विजय के बाद जो प्राप्त होती है वह भक्ति है। इन तीन रूपों में भक्ति के वर्णन का अभिप्राय यह है कि भक्ति में मधुरता है, भक्ति में प्रकाश है और साथ ही समस्त दुर्गुण-दुर्विचारों को नष्ट करके ही भक्ति को पाया जा सकता है। तो दुर्गुण-दुर्विचारों के साथ यह लड़ाई कैसे होगी? बोले – इसके लिये ज्ञान है तलवार और वैराग्य है ढाल –

बिरति चर्म असि ग्यान मद
लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति
देखु खगेस बिचारि ।। ७/१२०

ज्ञान की तलवार लेकर जब आप लोभ, मोह, मद आदि रिपुओं से लड़ेंगे, तो पास में वैराग्य की ढाल भी होनी चाहिए। ढाल गैंडे के जिस चमड़े से बनती है, वह बड़ा कठोर होता है। और उसके बाद भी उसे सूखा – विरक्त अर्थात् उसमें रक्त का अभाव होना चाहिए। बिना विरक्त हुए चमड़े से ढाल बन ही नहीं सकता। अभिप्राय यह है कि भक्ति-रूपी अनुराग की रक्षा करने के लिये शुष्क वैराग्य की ढाल चाहिए। वह विरक्त ढाल ही अनुराग-रक्त की रक्षा करता है। यदि आपके पास ढाल नहीं है, तो शत्रु तलवार चलायेगा और आपका रक्त गिरेगा। पर वह जो रक्तरहित ढाल है, आगे बढ़कर आपके रक्त को बचा लेता है। अतः अनुराग-रूप रक्त को बचाना है, तो विरक्ति-रूप ढाल की जरूरत है। लक्ष्मणजी की यही भूमिका है। प्रभु दोनों दृश्य दिखाना चाहते थे। सीताजी का हरण क्यों हुआ और क्यों नहीं हुआ? भेद है वैराग्य की भूमिका में। लक्ष्मणजी सदा पीछे क्यों चलते हैं? योद्धाओं के चित्र में देखिए। जब लड़ते नहीं थे, तो ढाल पीछे रहती थी। ढाल आगे नहीं रखी जाती थी। और जब वे लड़ते थे तो ढाल को पीछे से आगे ले जाते थे। सच्चा वैरागी स्वयं को दिखाता नहीं फिरता कि मैं वैरागी हूँ। उसका वैराग्य-रूपी ढाल पीछे छिपा हुआ है। जब कोई आक्रमण करेगा, तभी उसे उसका पता चलेगा। तो ये वैराग्य-रूपी लक्ष्मण हैं। ❖ (क्रमशः) ❖

वसुधैव कुटुम्बकम्

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

नीतिकार ने संकीर्णचित्त और उदार चित्त का अन्तर बतलाते हुए कहा है –

अयं निजः परो वैति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

– "संकुचित हृदयवालों की यह भावना होती है कि यह मेरा है और यह दूसरे का, पर उदार चरित्रवाले व्यक्तियों के लिए सारी वसुधा ही अपना कुटुम्ब बन जाती है।"

यह मनुष्य की ममता है, जो उसे छोटा बना देती है। कहा भी तो है - 'ममता बुरी बलाय'। यह सही है कि ममता के द्वारा माता-पिता अपनी सन्तानों के परिपालन की प्रेरणा पाते हैं, पर यह भी सही है कि ममता-रोग से ग्रस्त व्यक्ति स्वार्थ के तंग दायरे में घिरकर संकीर्ण, अनुदार और पक्षपाती हो जाता है। एक न्यायाधीश का किस्सा है। उसने न जाने कितने अपराधियों को फाँसी की सजा दी थी, किन्तु एक दिन जब उसी का लड़का हत्या के अपराध में उसी अदालत में पेश किया गया, तो न्यायाधीश का स्वर बदल गया। वह दलील देने लगा कि "फाँसी की सजा अमानवीय है। मनुष्य को ऐसी कठोर सजा देना शोभा नहीं देता। इससे अपराधी की सुधरने की आशा नष्ट हो जाती है। खून करने वाले ने भावना और आवेश में, जोश और उत्तेजना में खून कर डाला, परन्तु उसकी आँखों पर से खून का जूनून उतर जाने पर उस व्यक्ति को संजीदगी के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर मार डालना मानवता के लिए बड़ी लज्जा की बात है, बड़ा कलंक है, आदि आदि।" यदि न्यायाधीश के सामने उसका अपना लड़का न होकर अन्य कोई होता, तो उसने बेहिचक उसे फाँसी की सजा दे दी होती। पर लड़के के प्रति उसका ममत्व उसके कर्त्तव्य-पालन में आड़े आ रहा था।

इस ममत्व का कारण यह है कि हम संसार को 'वस्तुनिष्ठ' दृष्टिकोण से नहीं देख पाते। संसार को देखने के दो तरीके हैं - एक तो वह जिसे हम subjective यानी 'आत्मनिष्ठ' दृष्टिकोण कहते हैं और दूसरा objective यानी 'वस्तुनिष्ठ' दृष्टिकोण कहलाता है। पदार्थ के अपने कुछ विशिष्ट गुण होते हैं, जो उस पदार्थ के सन्दर्भ में तो अपरिवर्तनशील हैं, पर व्यक्ति-भेद से उनके महत्त्व और उपादेयता में भिन्नता हुआ करती है। उदाहरणार्थ, हम सोने की एक डली लें। सोने की दृष्टि से सोने के जो गुण हैं, वे परिवर्तित नहीं होते, पर विभिन्न व्यक्ति उस डली को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखेंगे - कोई उसमें हार देखेगा, तो कोई कंगन। जिसे कर्णफूल बनाने की इच्छा होगी, वह उस डली में कर्णफूल देखेगा। इस प्रकार, सोने के साथ रागात्मक सम्बन्ध में व्यक्ति-भेद से भिन्नता हो जाती है। यदि ये रागात्मक सम्बन्ध हटा दिये जायँ, तो व्यक्ति निरपेक्ष दृष्टि से सोने को देखने में समर्थ होगा। उसे सोना-सोना ही दिखाई देगा। हम अपनी इस बात को थोड़ा और स्पष्ट करें।

कल्पना करें कि एक व्यक्ति जरूरत में पड़कर अपना सोने का गणेशजी बेचने के लिए दुकान पर आया है। इस व्यक्ति के लिए भले ही गणेशजी का रूप सत्य हो, पर दुकानदार के लिए तो सोना ही सत्य है। वह रूप की तनिक परवाह नहीं करता। अगर गणेशजी हाथ से छूटकर नीचे गिर जायँ, तो बेचने वाला लपककर उसे उठा लेगा और देखेगा कि मूर्ति कहीं पर क्षत तो नहीं हुई। दुकानदार अविचलित रहता है। गणेशजी के मुड़ने और टूटने से उसका कोई प्रयोजन नहीं। गणेशजी साबुत हों तो भी उसकी दृष्टि में उतनी ही कीमत के होंगे, जितनी कि मुड़ने या टूटने पर।

हमारा सारा मोह तब शुरू होता है, जब परिस्थितियों को उनके वास्तविक स्वरूप में न देखकर हम उनके साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। इससे व्यक्ति निरपेक्ष नहीं रह पाता और इसीलिए जीवन की सारी भूलें हुआ करती हैं। तब हमारा सन्तुलन उपर्युक्त न्यायाधीश के समान बिगड़ जाता है और जाँच के हमारे सारे मापदण्ड ही बदल जाते हैं। ममत्व हमें संकीर्ण बना देता है। ममत्व का यह रोग हममें इतनी गहराई तक व्याप्त है कि इसने हमारे राष्ट्रीय चरित्र को ही दूषित कर दिया है। रोग की इस विभीषिका से त्राण पाने का उपाय बस यही है कि हम अपने दृष्टिकोण को अधिक 'वस्तुनिष्ठ' बनाने का प्रयास करें। वही हमें उदारचेता बनाएगा। तभी हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव की ठीक ठीक धारणा कर सकेंगे। ❑❑❑

विजय हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है (४)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(श्री संत गजानन संस्थान अभियांत्रिकी महाविद्यालय, शेगाँव, महाराष्ट्र में स्वामी सत्यरूपानन्द जी पिछले कई वर्षों से वहाँ के विद्यार्थियों के मध्य व्याख्यान देने जाते रहें हैं। कभी-कभी उन्होंने वहाँ के विद्यार्थीयों केलिये अंग्रजी भाषा में व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी कार्यशालाएँ भी आयोजित की थीं, जिनमें दिये गये कुछ व्याख्यानों को उक्त महाद्यिालय ने छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित किया है। उन्हीं में से एक पुस्तिका "Born to Win" का हिन्दी में अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, के ब्रह्मचारी जगदीश ने 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ किया है। - सं.)

किसी बुरी आदत के उन्मूलन के लिए विचार अति महत्त्वपूर्ण है। वह हमारी बड़ी सहायता कर सकता है, और वह भी भीतर से। प्रत्येक व्यक्ति को बुरी आदतों से होने वाली हानि का गभीरता से विचार करना चाहिए। व्यक्ति को अपनी बुरी आदतों से पूर्व में ही हो चुकी हानि का स्मरण एवं उस पर विचार करना चाहिए तथा कल्याणकारी अच्छी आदतों को अपनाकर उन्हें पुष्ट करने से होने वाले महान् लाभ का सुझाव अपने मन को देना चाहिए। इस प्रकार मन को दिया गया सतत सुझाव हमारे मनोबल में वृद्धि करता है तथा बिना विचार के बुरी आदत को वश में करने की तुलना में तब बुरी आदतों का उन्मूलन आसान हो जाता है। बुरी आदतों के उन्मूलन एवं अच्छी आदतों को अपनाने की प्रक्रिया में हमें स्वयं को आत्मविश्वासी एवं विजयपूर्ण आत्मसुझाव देने चाहिए।

जैसे, मैं इन बुरी आदतों का उन्मूलन कर सकता हूँ, मैं अच्छी आदतों को अपना सकता हूँ, अंततः मैं अवश्य विजय प्राप्त करूँगा ही – इस तरह के आत्मसुझाव व्यक्ति को दिनो-दिन मजबूत बनाते हैं और जब व्यक्ति पर्याप्त मनोबल अर्जित कर लेता है, तब बुरी आदतें उसके व्यक्तित्व से वैसे ही निकल जाती हैं जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से स्वयं ही झड़ जाते हैं। विजय एवं सफलता का निरन्तर गहन चिन्तन ही, अपने आप में, अन्तिम विजय प्राप्ति की ओर एक बड़ी सफलता है। इसलिए हमें अपने विचारों के प्रति अत्यंत सावधानी रखनी होगी, विशेषकर तब, जब हम बुरी आदतों का उन्मूलन चाहते हों और दिव्य जीवन की प्राप्ति की अभिलाषा रखते हों।

ये सभी प्रक्रियायें संयम एवं अनुशासन की ही परिधि में आती हैं।

एक महान् सहायता – कल्पना-शक्ति

भगवान श्रीरामकृष्ण के शिष्य एवं स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्दजी ने एक साधक को लिखा था, "आज की कल्पना, कल की अनुभूति है।" यह स्वामी तुरीयानन्द जैसी महान् आत्मा का अति महत्वपूर्ण वक्तव्य है। हमारे चरित्रगठन एवं व्यक्तित्व विकास में कल्पना की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जिस बात का हम निरंतर विचार एवं कल्पना करते हैं, कालानुक्रम से वही हो जाते हैं।

यह कल्पना-शक्ति एक दुधारी तलवार की तरह है। यह दोनों ओर से काटती है। एक ओर तो उन्नत एवं उत्कृष्ट कल्पना हमें सत्यानुरागी बना हमारा जीवन दिव्य एवं धन्य करती है, वहीं दूसरी ओर पाशविक वृत्ति को प्रश्रय देने वाली क्षुद्र कल्पना हमें पशुता की ओर घसीट कर समाज के लिए एवं स्वयं के लिए अभिशाप बन जाती है।

कल्पना, ईश्वर द्वारा मानव मन को प्रदत एक असाधारण शक्ति है। ईश्वर ने यह शक्ति हमें स्वयं को उठाने अथवा गिराने के लिए दे रखी है। ईश्वर ने अत्यन्त दयापूर्वक यह शक्ति हमें दी है तथा हमें परम स्वतंत्रता भी प्रदान की है - चाहें तो कल्पना-शक्ति का उपयोग हम भलाई के लिए करें अथवा निकम्मे उद्देश्यों में उसे नष्ट करें। ईश्वर ने मनुष्य के द्वारा कल्पना शक्ति के भले अथवा बुरे उपयोग हेतु चुनाव-अधिकार को अपने पास सुरक्षित नहीं रखा है। इसे उसने मनुष्य को दे रखा है। वह कल्पना-शक्ति का जैसा चाहे वैसा उपयोग कर ले। अतः हमें अपनी कल्पना-शक्ति का उपयोग अत्यन्त सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

स्वयं की एक उन्नत छवि का निर्माण करो

आइए, हम शांत होकर बैठे एवं स्वयं की एक छवि उकेरने का प्रयास करें। स्वयं से पूछें कि हम किस तरह के व्यक्ति होना चाहते हैं? हम उन्हीं अद्भुत गुणों एवं शक्तियों की कल्पना करें, जिन्हें अपने पूर्ण विकसित व्यक्तित्व में देखना चाहते हैं। हम अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एक ऐसा स्पष्ट चित्र बनाने की कोशिश करें, जिसमें सभी उन्नत एवं उत्कृष्ट गुणों की पूर्ण अभिव्यक्ति होती हो।

अपने व्यक्तित्व का मानसिक चित्र बनाने में हम जितने स्पष्ट एवं निश्चयी होंगे, उतने ही उत्कृष्ट जीवन एवं उन्नत व्यक्तित्व का निर्माण करने में सफल रहेंगे।

लिखकर रखने का अभ्यास

केवल बैठकर, विचारों में ही कल्पना के माध्यम से अपने विकसित व्यक्तित्व का चित्र उकेरना आसान बात नहीं है। अच्छा यह होगा कि जिन सारे गुणों एवं शक्तियों को हम अपने

चरित्र एवं व्यक्तित्व में देखना चाहते हैं, उन्हें लिख लें। हमें उन सभी गुणों को विस्तार से लिख रखना चाहिए, जिनसे अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व को हम ओत-प्रोत देखना चाहते हैं। उदाहरणार्थ - एक व्यक्ति आत्मसंयमी बनना चाहता है। आत्मसंयम से क्या तात्पर्य है? इसका अर्थ है, मेरी सारी इन्द्रियाँ मेरे वश में हों। उन्हें मेरी आज्ञा एवं आदेश का पालन करना चाहिए, न कि मुझे ! इसका अर्थ हुआ मुझे अपनी इन्द्रियों पर दृष्टि रखनी होगी, जिससे वे मेरी योजना और मार्गदर्शन के अनुसार परिचालित हों। अतः आत्मसंयम का अर्थ है कि मेरी जिह्वा मेरे वश में है, मेरी आँखें मेरे वश में हैं, मेरे कान मेरे वश में हैं, मेरा मन मेरे वश में है, सारांश यह कि मैं अपने देह, इन्द्रियों एवं मन का स्वामी हूँ।

आइए हम आत्म-निरीक्षण करें और पता करें कि वास्तव में क्या ऐसा है? क्या मेरे देह, इन्द्रियाँ एवं मन अपनी बातें मनवाने को मुझे विवश कर रहे हैं अथवा मुझमें उनके प्रत्येक अवांछनीय सुझावों को नकार देने की पर्याप्त शक्ति है।

आइए, हम एकाग्र मन से कल्पना करें कि मेरी सारी इंद्रियाँ मेरे वश में हैं, मेरा शरीर तथा मन मेरी आज्ञाओं का पालन कर रहे हैं। मेरा शरीर तथा मन व्यक्तित्व के विकास में मित्र बन मेरी सहायता कर रहे हैं। वे व्यक्तित्व की निम्न अवस्था से उच्च अवस्था तक उठने में मेरी सहायता कर रहे हैं। वे अब तक निष्क्रिय एवं सुप्त हमारी दिव्यता को अभिव्यक्त करने में हमारी सहायता कर रहे हैं।

आइए, हम कल्पना करें कि हमारा मन दिन-प्रतिदिन शांत होता जा रहा है। हम भावना करें कि कोई भी बाह्य अथवा अंतः व्यवधान हमें विचलित कर सकने में समर्थ नहीं है, क्योंकि हमारा मन सन्तुलन एवं शान्ति में स्थित हो गया है।

अब हम भावना करें कि हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व सबके प्रति प्रेम से पूर्ण हो गया है। भावना करें कि हम पूरी तरह निःस्वार्थ हो गये हैं। हम भावना करें कि आसपास के लोगों की बिना प्रतिदान की आकांक्षा से सेवा करना ही हमारा स्वभाव एवं जीवन-दर्शन हो गया है। हम भावना करें कि हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व पवित्रता से परिपूर्ण हो गया है। हमारी सारी अशुद्धता दूर हो गई है। इस तरह की भावनायें सर्वोच्च जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति में हमारी महान् सहायक सिद्ध होंगी।

सत्यमेव जयते :- सत्य की ही विजय होती है

हम सत्य से क्या समझते है ? सत्य का अर्थ है कि किसी बात को जैसा हमने देखा एवं जाना है, उसमें बिना कुछ जोड़-तोड़ के वैसा का वैसा ही उसे व्यक्त करना। दूसरे शब्दों में, अपने अनुभव को जैसा का तैसा अभिव्यक्त करना।

जीवन में परम सिद्धि के लिए तथा सभी परिस्थितियों एवं आयामों में विजय-प्राप्ति हेतु, हमें अपने दैनन्दिन जीवन में एकमात्र सत्य को पकड़ कर रहना होगा। प्रतिदिन काम-काज के बीच हमें सत्यनिष्ठा का यथाशक्ति प्रयत्न करना होगा। सत्य हमें बल प्रदान करता है। वह हमें निर्भय बनाता है। उदाहरणार्थ - आप तीन-चार दिनों से अथवा हफ्ते भर से कक्षा में अनुपस्थित रहे हैं। यदि आपने अपनी अनुपस्थिति का समुचित कारण प्रस्तुत नहीं किया तो आपको आर्थिक दण्ड अथवा अन्य कोई सजा मिल सकती है। मान लीजिये, आपका कोई मित्र आपको इस स्थिति में सुझाव देता है, "किसी चिकित्सक के पास से कुछ अतिरिक्त शुल्क देकर एक झूठा बिमारी सम्बन्धी चिकित्सकीय प्रमाण पत्र बनवा लो। वह तुम्हारी अनुपस्थिति के औचित्य को सिद्ध कर देगा और इस तरह तुम सजा से बच जाओगे।"

आपाततः यह प्रस्ताव बहुत लुभावना एवं निर्दोष लगता है। किन्तु हम निश्चयपूर्वक जानते हैं कि यह असत्य है। इस तरह यदि एक बार हम झूठ को सच के रूप में प्रस्तुत करने में समझौता कर लेते हैं, तो सम्भव है, उससे हममें तात्कालिक लाभ तो हो सकता है; पर हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार लिया गया झूठ का आश्रय हमारी नैतिकता एवं आध्यात्मिकता को हानि पहुँचा कर, जीवन में परम सिद्धि की उपलब्धि में अंततः हमारी पराजय का कारण बनता है।

अतः हमें अपनी लापरवाही एवं असावधानी के फल-स्वरूप होने वाली कठिन और असुविधाजनक सजा का साहसपूर्वक सामना करना चाहिए। उस समय के लिए वह एक अत्यन्त पीड़ादायक अनुभव हो सकता है, किन्तु एक बार अपनी दुर्बलता एवं असावधानी को स्वीकार कर, उसे दूर करने का निश्चय कर लेने पर, वह भीतर से हमें नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्रदान कर जीवन के परम युद्ध में विजय प्राप्ति का एक मौलिक कारण बन जाता है। ❖ (क्रमशः) ❖

वेदान्त-बोधक कथाएँ (५)

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी विश्वाश्रयानन्द जी ने वेदान्त के गूढ़-गहन तत्त्वों को अभिव्यक्त करनेवाली कुछ कथाओं को बँगला में लिखकर 'गल्पे वेदान्त' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया था। बाद में स्वामी अमरानन्द जी ने उसका आंग्ल रूपान्तरण किया। दोनों ही पुस्तकें काफी लोकप्रिय हुई हैं। उन्हीं कथाओं का हिन्दी अनुवाद हम धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। – सं.)

माया का दर्शन

अद्वैत वेदान्त के मतानुसार देह-मन-इन्द्रियों और आत्मा के बीच अतिशय भेद है। चरम समाधि की अवस्था में शरीर, इन्द्रियाँ तथा मन कार्य करना बन्द कर देते हैं। जिसे इस अवस्था की प्राप्ति हो जाती है, वह एक व्यक्ति-विशेष नहीं रह जाता। यह एक ऐसी अवस्था है, जिसमें आत्मा शुद्ध चेतना के रूप में अपने स्वयं के आनन्द में डूबी रहती है। इस प्रकार शुद्ध सत्-चित् और आनन्द सबके मूल में स्थित है और इस मूल तत्त्व को ही आत्मा कहते हैं। अज्ञान के कारण आत्मा को देह, इन्द्रियों तथा अन्य पदार्थों के साथ एकत्व का भ्रम हो जाता है और वह स्वयं में उनके गुणों को आरोपित करके स्वयं को सुख-दुख तथा जन्म-मृत्यु का विषय मानने लगती है। यह अज्ञान आत्मा के सार-तत्त्व को ढँक देता है और इस सांसारिक प्रपंच में उठनेवाली विभिन्न परिस्थितियों के द्वारा मन को विचलित करता रहता है। अद्वैत वेदान्त के मतानुसार इस अज्ञान या माया को न तो सत्य कहा जा सकता है, न असत्य। निम्नलिखित कहानियाँ माया के सिद्धान्त को समझने में सहायता करती हैं –

आचार्य शंकर और विधवा

महान् दार्शनिक तथा संन्यासी आचार्य शंकर का हम पहले ही उल्लेख कर आये हैं। उनका जन्म लगभग १२०० वर्ष पूर्व केरल प्रान्त में हुआ था। उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे तथा असंख्य स्तोत्रों की रचना की। वे एक अभूतपूर्व प्रतिभा के धनी थे और बाद में एक किम्वदन्ती बन गये।

हिन्दू लोग वाराणसी को अत्यन्त पवित्र नगर मानते हैं। अपने गुरुदेव के आदेश पर एक बार शंकराचार्य वहाँ आये। अपनी दिनचर्या के अनुसार एक दिन वे गंगा में स्नान करने गये। स्नान करने के बाद घाट की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वे संस्कृत श्लोकों का पाठ कर रहे थे। उन श्लोकों से विश्व-ब्रह्माण्ड की एकता का भाव प्रकट हो रहा था। शंकराचार्य इस सूक्ष्म तथा गहन तत्त्व की घोषणा किया करते थे कि ब्रह्म ही इस चराचर विश्व का एकमात्र मूलभूत तत्त्व है।

शंकर ने ज्योंही नदी के तट पर कदम रखा, त्योंही यह देखकर उनके मन को धक्का लगा कि मार्ग में एक मृतदेह पड़ी है। एक विधवा अपने पति के उस शव के पास बैठी थी। शंकराचार्य उस महिला से बोले – "कृपा करके इस लाश को हटा लो। इसने मेरा मार्ग अवरुद्ध कर रखा है।" महिला ने उत्तर दिया – "बाबा, कृपया आप स्वयं ही शव से हट जाने को कह दें। मुझे क्यों बीच में डालते हैं?"

शंकर बोले – "तुम पागल हो क्या? मेरे कहने से यह मृत शरीर कैसे हटेगा? जीवित होने पर ही तो इसमें हटने की शक्ति होती।"

महिला ने उत्तर दिया – "क्या इतना-सा हटने के लिये भी शक्ति की आवश्यकता है?"

शंकराचार्य बोले – "कैसी असम्भव बात कहती हो! मृतदेह को तो किसी को हटाना पड़ता है, यह स्वयं भला कैसे हट सकती है?"

विधवा ने उत्तर दिया – "इस प्रकृति में सब कुछ चल-फिर और परिवर्तित हो रहा है। बिना किसी चेतना शक्ति के नियंत्रण के ही यदि यह जड़ प्रकृति इतना सब कर सकती है, तो फिर यह शव अवश्य ही यहाँ से हट सकता है।"

शंकराचार्य विस्मित हो उठे। उन्हें बोध हुआ कि ब्रह्म ने ही ये विविध रूप ले रखे हैं। फिर, ब्रह्म ही समस्त गतियों तथा परिवर्तनों की नियंत्रक शक्ति हैं। और यह नियंत्रक शक्ति ही इस ब्रह्माण्ड का मूलाधार होना चाहिये।

लाश और वह महिला, दोनों ही सहसा शंकराचार्य की आँखों के सामने से अन्तर्धान हो गये। वे समझ गये कि जगदम्बा ही, अपनी असीम कृपा से वशीभूत होकर, उनकी दर्शन को परिपूर्णता प्रदान करने के निमित्त उस विधवा के वेश में घाट पर प्रकट हुई थीं।

जब रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाता है

घड़ी ने अभी-अभी नौ का घण्टा बजाया था। 'सुन्दरवन के बाघ' फिल्म देखने के बाद हीरेन वापस अपने घर लौट रहा था। रॉयल बंगाल बाघों के अंचल में जाकर इस फिल्म का निर्माण किया गया था और वह मन-ही-मन फिल्म-निर्माताओं

की कुशलता की प्रसंशा किये जा रहा था। यद्यपि वह जानता था कि वह जो कुछ देखकर आया है, वह सब कैमरे से अंकित किये गये चित्र मात्र हैं, परन्तु बाघ ने जब नदी के भीतर जाकर बेचारे मछुवारे को पकड़ा था, तो उसकी याद से उसे होनेवाला भय वास्तविक था।

हिरेन उस दृश्य के बारे में सोचता हुआ चला जा रहा था। चलते-चलते वह सहसा चौंक गया। सामने सड़क पर एक साँप लेटा हुआ था। उस पर उसका पाँव पड़ते-पड़ते रह गया था। बड़े भाग्य से ही उसकी जान बच गयी थी। वह थोड़ा पीछे हटकर और भी अच्छी तरह साँप को देखने लगा। यह एक वैसा ही नाग लग रहा था, जैसा कि उसने कुछ दिनों पूर्व सँपेरे की टोकरी में देखा था।

हिरेन ने साँप से बचने के लिये बगल का एक दूसरा रास्ता पकड़ने की सोची। तभी उसने देखा कि एक व्यक्ति हाथ में टार्च लिये उस साँप की ओर ही चला जा रहा है।

हिरेन चिल्लाया – "उधर से मत जाओ, सड़क पर एक नाग लेटा है।"

वह व्यक्ति बोला – "डरो मत। मेरे साथ आओ। घण्टे भर पहले मैं इसी सड़क से होकर गया था। मैंने तुम्हारे साँप को देख लिया है। वह नाग नहीं, रस्सी का एक टुकड़ा मात्र है।" वह हिरेन को उस जगह ले गया। हिरेन ने टार्च से आलोकित सड़क स्पष्ट रूप से देखा कि वहाँ रस्सी पड़ी है। दोनों खिल-खिला कर हँस पड़े। हिरेन का भय जा चुका था।

कभी-कभी हम एक वस्तु को कुछ दूसरा समझ बैठते हैं। और इस कारण हम भ्रमित या भयभीत हो जाते हैं। वेदान्त के मतानुसार रस्सी में सर्प के भय के समान ही हमारे सुख-दुख, हमारी समस्याएँ, आशंकाएँ और चिन्ताएँ एक तरह के भ्रम पर आधारित होती हैं। मूलत: हम पूर्ण और आनन्दमय हैं, तथापि हम अपने को श्मशान की ओर अग्रसर हो रहे एक लाचार मर्त्य प्राणी के रूप में देखते हैं। हम लोग ऐसा व्यवहार करते हैं मानो हम पर जादू कर दिया गया हो और इसी को वेदान्त में माया कहते हैं। जब माया का जादू टूट जाता है, तब हमें अपने वास्तविक स्वरूप के बारे में छकाया नहीं जा सकता।

मुखौटा उतारना

रामपुर नामक गाँव नगर से कुछ मील की दूरी पर स्थित था। दिसम्बर का उत्तरार्ध चल रहा था। हर साल की तरह इस साल भी हरि रामपुर में आया हुआ था। वह बहुरूपिये का काम करता था। प्रतिदिन अपराह्न के समय वह विभिन्न प्रकार के वेश धारण करके गाँव में निकलता – किसी दिन संन्यासी का, तो किसी दिन भिखारी का, किसी दिन राजा का तो किसी दिन सिपाही का। उसका अभिनय विशेषकर बच्चों में बड़ा ही लोकप्रिय था। वह अपने पास तरह-तरह के पोशाक, मुखौटे तथा रंग रखता था।

दिसम्बर माह के अन्तिम रविवार को रामपुर के दो प्रमुख स्कूलों – मॉडल स्कूल और आदर्श स्कूल के बीच क्रिकेट-मैच आयोजित हुआ था। दोनों टीमें तगड़ी थीं और मैच के सम्भावित नतीजे को लेकर छात्रों में बड़ी उत्तेजना फैली हुई थी। मैच में बच्चों का इतना आकर्षण देखकर उस दिन हरि ने भी छुट्टी मनाने की सोची।

आखिरकार मैच समाप्त हुआ। मॉडल स्कूल की जीत हुई थी। तब तक संध्या का धुँधलका भी घिरने लगा था। मॉडल स्कूल के छात्र अपनी टीम की सफलता पर फूले नहीं समा रहे थे। उनमें से कुछ लड़के अँधेरा हो जाने तक मैदान में खुशी मनाते रहे। बिपिन बाकी बच्चों से थोड़ा बड़ा था। उसने बच्चों से घर लौट जाने की सलाह दी। तब भी मैच की ही चर्चा में मशगूल होकर बच्चे मैदान के कोने की एक झाड़ी के पास से होकर गुजर रहे थे।

सहसा तभी बिपिन ने देखा कि चमकीली आँखों और बड़े-बड़े पंजों वाला एक धारीदार बाघ झाड़ियों में छिपा बैठा है। वह चिल्ला उठा – "ठहरो! बाघ है! निश्चय ही वह किसी भी असावधान राहगीर को पकड़ने के लिये वहाँ घात लगाये बैठा था। कुछ लड़के सहमकर वहीं बैठ गये, कुछ भागने लगे और कुछ वहीं जड़ीभूत होकर खड़े रह गये।
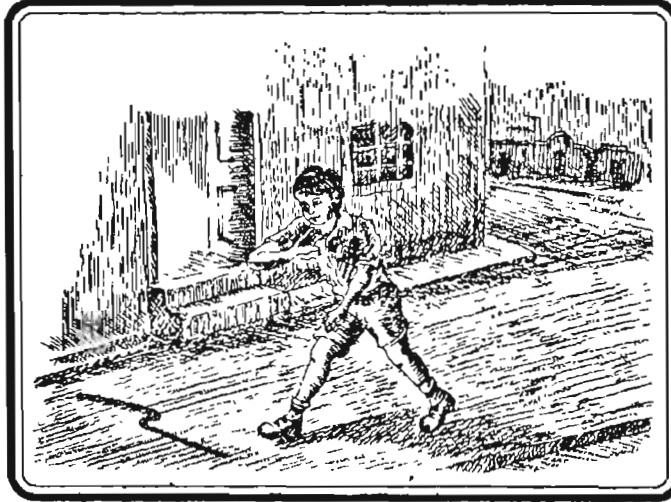
उस पूरी टोली में यतीन सबसे साहसी था। वह सबके पीछे-पीछे आ रहा था, इसलिये उसने थोड़ी दूरी से सारा वाकया देखा। उसे सूर्यास्त के बाद इतनी जल्दी बाघ का निकलना थोड़ा अस्वाभाविक-सा लगा। अपनी सुरक्षित दूरी से उसने ध्यानपूर्वक उस जानवर का निरीक्षण किया। उसने देखा कि बाघ के पाँवों के पीछे मनुष्य के हाथ-पाँव छिपे हुए हैं। साहस जुटाकर वह तत्काल झाड़ी के पास जा पहुँचा और हरि से अपना मुखौटा उतार देने को कहा। झाड़ी की ओर से जोर की हँसी की आवाज आयी। अब सभी बच्चों ने हरि का खेल समझ लिया था। अब उन्हें पूरी घटना इतनी मजेदार लग रही थी कि हँसते-हँसते उनके पेट में बल पड़ गये। हरि का खेल हो चुका था। अब लड़कों को और डराना सम्भव नहीं था, इसलिये वह चलता बना।

एक बार यदि हम माया का खेल समझ जायँ, तो वह हमें दुबारा बुद्धू नहीं बना सकती। कोई भी रोग या शोक, अथवा कोई भी सुख या सफलता – ज्ञान में सुस्थिर हुए मन की सौम्य शान्ति और सन्तुलन को भंग नहीं कर सकती।

नारद का माया-दर्शन

एक बार देवर्षि नारद ने श्रीकृष्ण से माया का वास्तविक स्वरूप दिखलाने का अनुरोध किया। नारद ने माया के बारे में बहुत-से व्याख्यान सुन रखे थे। उन्होंने दार्शनिकों का यह मत सुन रखा था कि माया के प्रभाव से असत्य भी सत्य के रूप में प्रकट होता है। परन्तु नारद माया की मोहिनी शक्ति का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते थे। श्रीकृष्ण राजी हुए।

कुछ दिनों बाद श्रीकृष्ण ने नारद से एक लम्बी यात्रा पर चलने को कहा। एक शुभ दिन देखकर दोनों ने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। अनेक नगरों तथा प्रान्तों का भ्रमण करते हुए वे एक मरुभूमि में जा पहुँचे।

उस अन्तहीन-से रेगिस्तान में सर्वत्र बालू ही बालू बिखरा हुआ दिखाई पड़ रहा था। उस पूरे क्षेत्र में इक्के-दुक्के ही मरूद्यान दीख पड़ते थे। श्रीकृष्ण और नारद उसी निर्जन मरुभूमि से होकर जा रहे थे। सूर्योदय के बाद गर्म हवा के कारण वे थकान तथा प्यास का अनुभव करने लगे। श्रीकृष्ण ने नारद से जाकर थोड़ा-सा पानी ले आने को कहा।

थोड़ी दूरी पर नारद को एक मरूद्यान दिखाई दिया। हाथ में पात्र लिये वे उसी ओर दौड़ पड़े। महान् भक्त नारद को अपनी प्यास से भी अधिक श्रीकृष्ण के प्यास से बड़ी पीड़ा हो रही थी।

उस उद्यान के पास नारद को कुछ झोपड़ियाँ भी दिखाई दीं। उन्होंने पहली ही कुटिया के द्वार को खटखटाया। एक सुन्दर युवती ने द्वार खोले। नारद उसके लावण्य पर ठगे-से रह गये। नारद पूरे दोपहर भर उसके साथ बातें करते रहे और श्रीकृष्ण के प्यास की बात बिल्कुल ही भूल गये।

इसके बाद वह पूरी रात बड़ी बेचैनी के साथ उस सुन्दरी के चिन्तन में बिताने के बाद अगले दिन सुबह वे पुन: कुटिया के द्वार पर आ पहुँचे। शीघ्र ही कन्या के माता-पिता की सहमति से उनका विवाह भी हो गया और नदी के पास की उपजाऊ जमीन में दोनों ने अपनी गृहस्थी जमा ली। नारद ने वहाँ अपनी पत्नी के साथ बड़े सुखपूर्वक बारह वर्ष तक निवास किया। इस दौरान उनके तीन स्वस्थ तथा सुन्दर सन्तान भी हुए।

बरसात का मौसम समाप्ति पर था। तभी एक दिन जो वर्षा शुरू हुई तो चार दिनों तक लगातार होती रही। इसके फलस्वरूप दोपहर तक बाढ़ आने लगी। नदी भर जाने के बाद चारों ओर घुटने भर पानी फैल चुका था। कुछ घण्टों के बाद पूरे गाँव में तीन फीट पानी भर गया। उस घर में ठहरना खतरे से खाली नहीं था और ऊपर से तेज आँधी भी चलनी शुरू हो गयी। नारद ने निश्चय किया कि अँधेरा होने के पूर्व ही सपरिवार किसी सुरक्षित जगह चले जायँ।

नारद अपने कन्धों पर दो बच्चों को बिठाये गाँव पार करने लगे, तीसरे बच्चे को गोद में लिये उनकी स्त्री पीछे-पीछे आ रही थी। नदी की गति में सहसा काफी वृद्धि हो गयी। पाँव लड़खड़ा जाने के कारण नारद पानी में गिर पड़े और उनके दोनों बच्चे कन्धे से गिरकर तत्काल बाढ़ में बह गये। किसी तरह उन्होंने उठकर अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर उसे सँभाल लिया।

इस बीच पानी इतना बढ़ा कि उनके पाँव धरती से ऊपर उठ गये और मिनटों में ही वे नदी की धारा में बहने लगे।

सहसा नारद की पकड़ से उनकी पत्नी तथा बचे हुए पुत्र का भी हाथ छूट गया और वे भी बह गये। घण्टे भर नदी में बहते रहने के बाद ही उनके पाँव स्थिर भूमि पर पड़े। थके-मादे, हताश और एकाकी नारद किसी प्रकार एक टापू पर पहुँचे और सिर पीटते अपने दुर्भाग्य पर शोक करने लगे।

परन्तु तभी नारद को पीछे से एक सुपरिचित आवाज सुनाई दी। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा – श्रीकृष्ण कह रहे थे, "मेरे लिये पानी लाने को गये हुए तुम्हें आधा घण्टा हो गया। तुम्हारे हाथ का लोटा कहाँ गया?"

"आधा घण्टा!" – नारद चिल्ला उठे। इस आधे घण्टे के दौरान ही नारद बारह साल बिता चुके थे!

तब नारद को बोध हुआ कि उन्हें श्रीकृष्ण की कृपा से माया के स्वरूप का दर्शन कराया गया है। नारद बोले – "बहुत हो गया माया का दर्शन! चलिये अब लौट चलें।"

वेदान्त के मतानुसार हमारी सभी जागतिक अनुभूतियाँ माया द्वारा रचित भ्रान्तियाँ मात्र हैं। आध्यात्मिक आलोक के प्रकट होने पर ये सभी अनुभूतियाँ असम्बद्ध स्वप्न में देखे गये थोथे दृश्य मात्र प्रतीत होते हैं। ❖ (क्रमशः) ❖

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

(अनेक वर्षों पूर्व विद्वान् लेखक ने 'विवेक-ज्योति' के लिए प्रेरक-प्रसंगों की एक शृंखला लिखी थी, जो बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित होकर बड़ी लोकप्रिय हुई। अनेक वर्षों के अन्तराल के बाद उन्होंने अब उसी परम्परा में और भी प्रसंगों का लेखन प्रारम्भ किया है। – सं.)

(२९) संतन के परताप से

राजगृह नगर में रोहिणेय नाम का एक चोर रहता था। राज-कर्मचारी उसे पकड़ने के लिए हर सम्भव प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु वह उनके हाथ नहीं आ रहा था। एक बार वह सड़क से जा रहा था कि समीप ही उसे भीड़ दिखाई दी। पूछने पर पता चला कि वहाँ महावीर स्वामी का प्रवचन चल रहा है। रोहिणेय के पिता आस्तिक थे और उन्होंने उससे कहा था कि जीवन में अगर सफलता पाना है, तो उसे कथा-कीर्तन तथा प्रवचनों से बचना होगा। जब रोहिणेय को प्रवचन के शब्द सुनाई देने लगे, तो उसने उनसे बचने के लिये अपने कानों में उंगलियाँ डाल लीं। वह आगे बढ़ा, तो उसके पैर में एक काँटा चुभ गया। काँटे को निकालने के लिए उसे एक कान की उंगली निकालनी पड़ी। तभी महावीर स्वामी द्वारा कहे ये शब्द उसे स्पष्ट सुनाई दिये – "देवताओं की काया की छाया पृथ्वी पर नहीं पड़ती। इसी प्रकार उनके चरण भी पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर ही उठे रहते हैं।"

रोहिणेय के और आगे बढ़ने पर एक राज-कर्मचारी को उस पर शक हुआ और वह उसे पकड़कर नगर-कोतवाल के पास ले आया। कोतवाल ने जब उससे पूछा कि वह कौन है, तो वह मौन बना रहा। हर तरह से कोशिश करने के बाद भी वह खामोश ही रहा, तो कोतवाल को एक युक्ति सूझी। उसने एक जड़ी पीसकर उसे पिला दी। इससे उसे मूर्च्छा आ गई। इसी हालत में उसे एक स्थान पर ले जाया गया।

मूर्च्छा टूटने पर रोहिणेय ने जब आँखें खोलीं, तो उसने स्वयं को एक उपवन में पाया, जहाँ दासियाँ उसे पंखा झल रही थीं। उसे होश में आया देख दासियों ने उसे प्रणाम किया। पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि वे स्वर्ग की अप्सराएँ हैं और उसकी खातिरदारी कर रही हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वे असत्य और छल-कपट बिल्कुल पसन्द नहीं करतीं। जो भी इसका सहारा लेता है, उसे नरक में फेंक दिया जाता है, जहाँ उसे भाँति-भाँति की यातनाएँ दी जाती हैं। दासियों द्वारा अपना परिचय पूछे जाने पर सहसा उसे महावीर स्वामी के प्रवचन के शब्द स्मरण हो आये – देवताओं की काया की छाया पृथ्वी पर नहीं पड़ती और उनके चरण पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर उठे रहते हैं। वह समझ गया कि मैं इन्द्र-लोक में नहीं बल्कि पृथ्वी-लोक में ही हूँ और मेरा परिचय जानने के लिए छल-कपट का सहारा लिया जा रहा है। उसने उत्तर दिया – "धोखाधड़ी करके मेरा परिचय प्राप्त करने की जरूरत नहीं। मैं स्वयं स्वीकार करता हूँ कि मैं रोहिणेय चोर हूँ। मुझे जो भी सजा दी जाए, मैं उसे भुगतने को तैयार हूँ। पर मेरी एक विनती है कि मेरी सजा पूरी होने पर मुझे महावीर स्वामी के पास पहुँचा दिया जाए।"

रोहिणेय के सत्य-कथन और पश्चात्तापयुक्त वाणी सुनकर पीछे खड़े कोतवाल ने राजा को सारी बात बताई। राजा ने उसकी सत्यवादिता से प्रसन्न हो उसे क्षमादान कर दिया और उसे महावीर स्वामी के आश्रम में पहुँचाने की व्यवस्था की।

(३०) साई सू सब होत है

एक बार दाभोलकर नामक एक सज्जन सिरड़ी गये। वहाँ पर साई बाबा का गुण-गान सुनकर उनकी उनसे मिलने की इच्छा हुई। वे जब बाबा के पास पहुँचे तो उन्हें वे कुछ ग्रामवासियों से घिरे हुए दिखाई दिये। ग्रामवासियों द्वारा बार-बार 'साई बाबा' सम्बोधित करते देख उन्हें आश्चर्य हो रहा था। उनकी ओर जब बाबा का ध्यान गया, तो उन्होंने अपना परिचय देकर प्रश्न किया – "आपको सब लोग 'साई बाबा' क्यों कहते हैं? क्या आप इसका अर्थ मुझे बताएँगे?"

बाबा ने मुस्कुराते हुए कहा "साई शब्द दो अक्षरों से बना है 'सा' और 'ई'। 'सा' का अर्थ होता है 'देवी' तथा 'ई' का 'माता'। तुम जानते ही हो कि हमारे यहाँ पिता को 'बाबा' कहकर सम्बोधित करते हैं। अत: 'साई बाबा' का अर्थ हुआ – देवी, माता और पिता। पिता जन्मदाता होता है। और माता जन्मदात्री होने के कारण उनके हृदय में अपने बेटे के प्रति प्रेम व स्वार्थ-भाव छिपा रहता है। देवी के बारे में ऐसा नहीं है। देवी के लिए वह बालक और भक्त दोनों होता है और उसमें सबके प्रति नि:स्वार्थ भाव होता है। पर इन तीनों के एकत्र होने पर इनमें नि:स्वार्थता का अनूठा संगम हो जाता है। 'बाबा' कहकर परमेश्वर को भी सम्बोधित किया जाता है। देवी-देवता, माता-पिता अपने निष्काम भक्तों व पुत्रों का सही मार्गदर्शन करके उन्हें भवसागर पार करने में सहायता करते है। उन्हीं के कारण सबको आत्मदर्शन, आत्मज्ञान व आत्म-प्रेरणा का बोध होता है और वे इस मायावी दुनिया में अपने गुरु की कृपा से सदाचारपूर्वक जीवन बिता सकते हैं।" ❑

हिन्दू धर्म की रूपरेखा (१७)

स्वामी निर्वेदानन्द

(प्राचीन काल में वैदिक या सनातन धर्म और वर्तमान में हिन्दू धर्म के रूप में प्रचलित धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है और विश्व के अन्य धर्मों से इसमें क्या समानता व भेद है, इसे समझ पाना हिन्दुओं के लिए भी अति आवश्यक है। विद्वान् लेखक ने अपने बँगला तथा अंग्रेजी ग्रन्थ में इस धर्म के मूल तत्त्वों का बड़ा ही सहज निरूपण किया है। उसका हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

ब्रह्माण्ड (स्थूल)

तन्मात्राओं के तामसिक अंश, पंचीकरण नामक एक विशेष प्रणाली के द्वारा आपस में मिलकर स्थूल पंचभूतों में परिणत होते हैं।[१] प्रत्येक स्थूल भूत एक निर्दिष्ट अनुपात में पाचों विभिन्न तन्मात्राओं के मिश्रण से गठित हुआ है। उदाहरणार्थ आकाश तन्मात्रा का आधा भाग और वायु आदि बाकी चार तन्मात्राओं में से प्रत्येक का आठवाँ भाग मिलाकर स्थूल आकाश का गठन होता है। इसी प्रकार वायु तन्मात्रा का आधा भाग और बाकी चार प्रकार के तन्मात्राओं प्रत्येक का आठवाँ भाग मिलाकर स्थूल वायु का गठन होता है। प्रत्येक स्थूल भूत का गठन इसी प्रकार होता है।

इन स्थूल पंचभूतों से ही गठित होते हैं – जीवों के स्थूल देह, उनके निवास हेतु विभिन्न लोक तथा भोग्य वस्तुओं का समूह। पंचभूतों से उत्पन्न इन सभी पदार्थों के स्थूल-सूक्ष्म, म्लान-तेजवान भेद से असंख्य विविध रूप होते हैं। वैसे इन सबका निर्माण हिरण्यगर्भ के संकल्प-मात्र से ही हो जाता है। वे मानो अपनी इच्छा से स्वयं को घनीभूत करके दृश्यमान विश्व में परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार 'विराट्' नामक एक महिमामय जीव की सृष्टि होती है और सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड उसका शरीर तथा चैतन्य ईश्वर उनकी आत्मा होती है।

हम पहले ही बता आये हैं कि हिन्दू धर्म के मतानुसार सृष्टि का कोई आदि नहीं है। अनन्त काल से ही प्रत्येक सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रत्येक प्रलय के पूर्व सृष्टि होती आयी है। ऐसा क्यों होता है? हिन्दू शास्त्र कहते हैं कि सृष्टि तथा प्रलय के बीच कार्य-कारण का एक योगसूत्र विद्यमान है। कर्म का फलप्रदाता के रूप में अलंघ्य नियम ही प्रकृति के कार्य-कारण-प्रवाह का मूल उद्गम है और यही हर बार की सृष्टि तथा उसके सभी कार्यों का परम नियामक है। प्रलय की अवस्था में पूर्व कल्प के जीवों के सारे कर्मफल संस्कार तथा वासनाएँ कारण अवस्था में लीन पड़ी रहती हैं। इनके फलीभूत होने के लिये ही सृष्टि के समय हिरण्यगर्भ से लेकर असंख्य जीव, उनके निवास के लिये उपयोगी विभिन्न लोक तथा खाद्य-पेय आदि विविध वस्तुएँ पैदा होती हैं। पूर्व कल्प (सृष्टिचक्र) में किये हुए अपने-अपने भले तथा बुरे कर्मों के अनुसार जीवों को सुख-दुख भोगना ही पड़ता है, नये कल्प में असंख्य भोग्य वस्तुओं के बीच उनका पुन: आविर्भाव होता है। इसीलिये कहते हैं कि प्रलय के समय प्रकृति में मानो एक बीज रह जाता है, जिससे एक विशाल वृक्ष के समान इस ब्रह्माण्ड का उद्भव होता है। जैसे वृक्ष के पहले बीज और बीज के पहले वृक्ष था, ठीक वैसे ही सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि की अनादि परम्परा रही है।

विश्व-रंगमंच के केन्द्र-स्थान पर जीवों का समूह अधिकार जमाये रहता है। उन्हें अपने कर्मों के फल भोगने हैं, इसी कारण कल्प के अन्त में समग्र विश्व का पुन: उद्भव होता है। इसीलिए समग्र विश्व मानो भोक्ता और भोग्य – इन दो भागों में बँटा हुआ है; जीव भोक्ता है और बाकी सब भोग्य है। इस दृष्टिकोण से देखने में आता है कि सम्पूर्ण चराचर विश्व वस्तुत: भोक्ता-भोग्य लक्षणवाला है।

अपने पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हमें बाह्य जगत् का बोध होता है, ये इन्द्रियाँ हमारे लिये विषय-भोग की यंत्र हैं। इनमें से हर इन्द्रिय भौतिक-विश्व के एक-एक विशेष अंग का बोध करती है और उस विशेष अंग को हो उस इन्द्रिय का विषय कहा जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध – इन्द्रियगोचर जगत् के ये पाँच अवयव, क्रमश: कर्ण, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा नासिका – इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। शब्द, स्पर्श आदि पाँच विषयों की अनुभूति के माध्यम से ही हमारा बाह्य जगत् के साथ सारा सम्पर्क होता है। हमारा यह भोग्य जगत् मानो इन पाँच प्रकार के उपादानों से ही रचित है।

भौतिक-विश्व से कोई उद्दीपना-प्रवाह आकर हमारी इन्द्रियों को उद्वेलित करते ही हममें विषय-बोध उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये कहा जा सकता है कि जब प्रकाश की तरंग नेत्रों को उद्दीपित करती है, तभी रूप का बोध जाग्रत होता है। इस दृष्टिकोण से बाह्य जगत् कुछ इन्द्रिय-उद्दीपक प्रवाहों की समष्टि-मात्र प्रतीत होता है।

स्थूल आकाश – शब्द का बोध कराता है। वायु – शब्द तथा स्पर्श का; तेज – शब्द, स्पर्श तथा रूप का; आप – शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस का; और क्षिति – शब्द, स्पर्श आदि पाँचों विषयों का ही बोध उत्पन्न करती है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक भूत अपने पूर्ववर्ती भूत की अपेक्षा एक-एक अधिक विषय का बोध कराता है। वह

१. देखिये – 'वेदान्त-परिभाषा' ग्रन्थ का सातवाँ अध्याय

अतिरिक्त विषय ही उस इन्द्रिय का विशेष गुण है। यथा, आकाश का विशेष गुण शब्द, वायु का स्पर्श, तेज का रूप, आप का रस और क्षिति का विशेष गुण गन्ध है।

इस प्रकार पाँच स्थूल भूत भिन्न-भिन्न प्रकार के विषय-बोध के उद्दीपक हैं। वे जड़-पदार्थों की नहीं, शक्ति की श्रेणी की सत्ताएँ हैं। यद्यपि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि उनके नाम जड़ पदार्थों के ज्ञापक प्रतीत होते हैं, परन्तु वस्तुत: वे असीम विश्व-शक्ति के विभिन्न प्रकारों की अभिव्यक्तियाँ हैं। हिन्दुओं के मतानुसार प्रकृति के भिन्न-भिन्न अभिव्यक्ति के द्वारा परब्रह्म ही विभिन्न जड़ पदार्थों के रूप में प्रतिभात होते हैं।[२] इस दृष्टिकोण से देखने पर भौतिक-विश्व में जड़ पदार्थों के वास्तविक सत्ता का नितान्त अभाव है। जड़ पदार्थ का रूप अत्यन्त भ्रामक है।

इस प्रकार हिन्दू ऋषियों के विश्लेषणात्मक दृष्टि से समग्र विश्व भोक्ता तथा भोग्य – इन दो श्रेणियों में विभक्त हुआ था। बाह्य जगत् के सारे भोग्य पदार्थ शब्द, स्पर्श आदि पाँच इन्द्रिय-गोचर विषयों के रूप में और सम्पूर्ण भौतिक-विश्व ज्ञानेन्द्रियों के विभिन्न प्रकार से उद्दीप्त करनेवाले पाँच स्थूल भूतों के रूप में विभक्त हुए थे। इससे यह समझा जा सकता है कि यह विश्लेषण भौतिक नहीं, बल्कि पूर्णत: मानसिक है। अत: आधुनिक विज्ञान जिन्हें मूलभूत पदार्थ (Elements) कहता है और जो इतने दिनों तक भौतिक-विश्व के जड़-उपादान के रूप में प्रसिद्ध थे, उनके साथ यहाँ तक कि इन स्थूल पंचभूतों को भी एक मान लेना भ्रान्तिकर होगा। हिन्दू शास्त्रों में कथित ये भूत बिल्कुल ही अलग श्रेणी के हैं। ये इन्द्रियों के उद्दीपक अति सूक्ष्म शक्तिमूलक सत्ताएँ मात्र हैं।

यहाँ तक कि स्थूल पंचभूतों को यदि ईथर, हवा आदि के समान जड़ वस्तु भी माना जाय, तो भी इन्हें वस्तु-जगत् के मौलिक उपादान के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में निम्नलिखित युक्तियाँ विचारणीय हैं –

प्रत्येक भूत का नाम सांकेतिक होना असम्भव नहीं है; वह उसी जाति के विभिन्न पदार्थों का द्योतक हो सकता है। यथा 'क्षिति' सभी ठोस पदार्थों का, 'आप' सभी तरल पदार्थों का और 'वायु' सभी गैसीय पदार्थों का जातिवाचक नाम हो सकता है। ऐसा होने पर ठोस, तरल तथा गैसीय अवस्था में स्थित विश्व के सभी जड़ पदार्थ ही इन तीनों भूतों के अन्तर्गत कहा जा सकेगा। 'अग्नि' को ताप तथा दृष्टिगोचर होनेवाले प्रकाश के सभी रूपों का द्योतक समझा जा सकता है, और 'आकाश' शब्द का अर्थ वह सर्वव्यापी अमूर्त ईथर समझा जा सकता है, जिसके माध्यम से प्रकाश, तड़ित् आदि की तरंगें प्रवाहित होती हैं। पाँचों भूतों को यदि इन्हीं अर्थों में लिया जाय, तो हमारे इन्द्रियों का गोचर सम्पूर्ण वस्तु-जगत् क्या इसी प्रकार पाँच प्रकार की सत्ताओं के अन्तर्गत नहीं आ जाता? बाह्य जगत् का यह विश्लेषण वास्तविक रूप से परिपूर्ण है।

दूसरी ओर, वैज्ञानिक विश्लेषण के फलस्वरूप जिन मौलिक जड़ पदार्थों के अविभाज्य परमाणुओं (Atoms) की समष्टि को बाह्य जगत् का मूल उपादान माना गया था, अब वह निरर्थक हो चुका है। इस समय परमाणुओं को जड़ पदार्थ का सूक्ष्मतम उपादान कहने से काम नहीं चलता। कुछ दिनों पूर्व तक जो परमाणु अविभाज्य माने जाते थे, वे अब विभाजित होकर इलेक्ट्रान, प्रोटान आदि कितने ही प्रकार के ऊर्जा-कणों के समूह के रूप में स्वीकृत हुए हैं। भौतिक-विज्ञानी अपने विश्लेषण-चातुर्य से जड़ पदार्थ के आपात दृश्यमान मायिक रूप के आवरण का भी भेदन कर सका है। जड़ पदार्थ को पूर्ण रूप से जड़ नहीं कहा जा सकता, अब यह शक्ति की जाति का स्वीकृत होने लगा है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि आधुनिक विज्ञान अपनी इस क्रान्तिकारी खोज के द्वारा मानो हिन्दुओं के प्रकृति-विज्ञान की ओर एक कदम आगे बढ़ा है।

हमने देखा कि विभिन्न स्थूल भूत भिन्न-भिन्न प्रकार के विषयबोध के उद्दीपक हैं। क्षिति, आप, तेज, मरुत् – प्रत्येक जिन विषयों का बोध उत्पन्न करता है, उसमें विज्ञान-विरोधी कोई असंगति देखने में नहीं आती। परन्तु आकाश को कैसे शब्द-बोध का उद्दीपक कहा जाता है? वैज्ञानिक जिसे ईथर कहते हैं, वह तो हमारे सभी इन्द्रियों के अगोचर है। उसे तो तेज-प्रवाह की माध्यम एक काल्पनिक सत्ता कहा जा सकता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि ठोस, तरल या गैसीय किसी भी अवस्था के जड़ पदार्थ के कम्पन से शब्द-तरंग उत्पन्न होता है और उसी प्रकार के किंसी पदार्थ के माध्यम से वह तरंग हमारे कानों तक पहुँचने पर शब्द-बोध की उत्पत्ति होती है। वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि शब्द-तरंग शून्य (Vacuum) से होकर प्रसारित नहीं होता। शून्य में विज्ञान-कल्पित ईथर रहने पर भी उसमें शब्द-तरंग की गति रुद्ध हो जाती है। इस प्रकार ज्ञात हुआ कि ईथर शब्द-तरंग के विस्तार के लिये अनुकूल नहीं है। अत: आकाश को शब्द-बोध का उद्दीपक कहना कैसे उचित है?

साधारण शब्द-तरंग की उत्पत्ति तथा प्रसार क्षिति, आप तथा वायु अर्थात् ठोस, तरल या गैसीय अवस्था के समस्त जड़ पदार्थों के माध्यम से होता है, इस बात से हिन्दू शास्त्रों का कोई मतभेद नहीं। क्योंकि हिन्दू शास्त्रों के मतानुसार इन तीनों भूतों की संरचना में आकाश-तन्मात्रा होने के कारण उनमें आकाश का गुण रहना पूर्णत: स्वाभाविक है। यहाँ तक तो आधुनिक विज्ञान के साथ हिन्दुओं के प्रकृति-विज्ञान का कोई विरोध नहीं है। केवल आकाश के बारे में ही हिन्दू शास्त्रों का

२. देखिये – अगला अध्याय

मत अलग है। परन्तु थोड़ा विचार करके देखने पर समझ में आ जाता है कि आकाश के बारे में हिन्दू शास्त्रों का जो मत है, वह आधुनिक विज्ञान के मत का विरोधी नहीं है; वह आकाश के विषय में थोड़ी अतिरिक्त जानकारी मात्र देता है।

क्षिति, आप, वायु नामक स्थूल जड़-पदार्थ[३] की सहायता से जो ध्वनि उत्पन्न तथा प्रसारित होती है, उसे स्थूल ध्वनि कहा जा सकता है। क्योंकि हिन्दुओं के मतानुसार सामान्य कानों के अगोचर तथा अति सूक्ष्म प्रकार का भी एक शब्द होता है। स्थूल शब्द-तरंग की गति को आकाश या ईथर रोक नहीं सकता, इस बात को स्वीकार करने में हिन्दुओं को कोई समस्या नहीं है।

हिन्दू ऋषियों को कुछ ऐसी साक्षात् घटनाएँ देखने को मिली थीं, जिसके आधार पर वे लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आकाश एक अति सूक्ष्म प्रकार के शब्द-बोध को उद्दीपित करता है। गहन ध्यान के समय इस प्रकार का शब्द सुनाई देता है, जिसे अनाहत ध्वनि कहते हैं। यह शब्द अति सूक्ष्म है। मन जब खूब शान्त तथा एकाग्र होता है, तभी यह कर्णगोचर होता है। किसी प्रकार के स्पन्दन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। अनाहत-ध्वनि का उद्दीपक भूत निश्चय ही सर्वदा विद्यमान रहता है, क्योंकि गम्भीर ध्यान में जब भी मन स्थिर होता है, तभी वह निर्मल तथा तेजपूर्ण श्रवणेन्द्रिय को सुनाई देता है। इस ध्वनि का एकमात्र उद्दीपक आकाश के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार हिन्दू शास्त्रों में देववाणी, अशरीरी वाणी या आकाश-वाणी के रूप में प्रसिद्ध अन्य एक प्रकार के सूक्ष्म शब्द का उल्लेख भी मिलता है। यूनानी पुराणों में जिस 'व्योम-संगीत' (Music of the spheres) का उल्लेख मिलता है, उसके पीछे भी सम्भवत: इसी प्रकार की कोई अनुभूति रही होगी। विभिन्न देशों के धर्मग्रन्थों में हम देखते हैं कि सृष्टि के आरम्भ से ही 'लोगस', 'वर्ड', 'स्फोट' आदि विभिन्न नामों के साथ शब्द की सत्ता को स्वीकार किया गया है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म आकाश के द्वारा ही इस शब्द का उत्पादन तथा वहन सम्भव है। क्योंकि तब भी उससे स्थूलतर किसी पदार्थ का उद्भव नहीं हुआ था।

३. ऐसा भी हो सकता है कि स्थूल क्षिति, आप तथा वायु के अन्तर्गत आकाश तन्मात्रा ही शब्द-तरंग का यथार्थ उद्बोधक हो तथा अन्य तन्मात्राएँ उसी तरंग की पुष्टि करके हमारे लिये कर्णगोचर शब्द का उत्पादन करती हों।

इसके बाद आकाश से लेकर पृथ्वी तक जिन भूतों का एक के बाद एक उत्पत्ति का जो क्रम हिन्दू शास्त्रों से ज्ञात होता है, उसके साथ भी किसी वैज्ञानिक तथ्य का विरोध नहीं है। ताप तथा प्रकाश का विकिरण करनेवाले निहारिका (Nebula) नामक एक वायवीय पदार्थ से भौतिक-विश्व का विकास हुआ है – वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप इसके सिवा अन्य कोई तथ्य अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। यहाँ इतनी ही बात ध्यान देने योग्य है कि वैज्ञानिकों के मतानुसार जिस निहारिका से विश्व के विकास का सूत्रपात हुआ, उसमें उसके पहले ही उत्पन्न वायु तथा तेज – हिन्दू शास्त्रों में कथित ये दो भूत विद्यमान हैं।

निहारिका का कुछ अंश, न जाने किस कारण उससे विच्छिन्न होकर क्रमश: घनीभूत हो जाता है – यही वैज्ञानिकों के मतानुसार ग्रहों आदि के जन्म की कथा है। वाष्पीय पदार्थ (वायु) घनीभूत होकर तरल पदार्थ (जल) में और तरल पदार्थ घनीभूत होकर ठोस पदार्थ (पृथ्वी) में परिणत हो जाता है – यही क्रम ध्यान देने योग्य है, क्योंकि हिन्दुओं के मतानुसार विकास का क्रम ठीक ऐसा ही है।

परन्तु हिन्दू शास्त्रों के मतानुसार भौतिक-विश्व का विकास आकाश से आरम्भ होता है; आकाश ही सर्वप्रथम प्रकट होनेवाला जड़ पदार्थ है। इसी से उद्भूत होता है वायु और वायु से अग्नि। इसी में निहारिका के जन्म की सूचना भी मिलती है, जिसके बारे में विज्ञान अब भी मौन है। वैसे यह प्रश्न उठ सकता है कि निहारिका के पूर्व के सृष्टिपर्व में वायु तथा अग्नि के आविर्भाव का क्या क्रम था? हिन्दू शास्त्र कहते हैं कि वायु के बाद ही अग्नि का विकास हुआ। आकाश के स्थूलतर वायवीय पदार्थों के प्रकट होने के बाद और वायु के कणों के परस्पर संघर्षण से ताप तथा प्रकाश (अग्नि) का उत्पन्न होना बिल्कुल भी अयौक्तिक नहीं है, बल्कि यही अत्यन्त सम्भाव्य प्रतीत होता है।

जैसे स्थूल आकाश प्रथम अभिव्यक्त जड़-पदार्थ है, वैसे ही स्थूल प्राण भी प्रथम अभिव्यक्त जड़-शक्ति है। इस शक्ति के प्रभाव से ही आकाश वायु में परिणत होता है और वायु से अग्नि का आविर्भाव होता है; और इस प्रकार सम्पूर्ण भौतिक-विश्व की उत्पत्ति होती है। इस प्राण-शक्ति के प्रभाव से अत्यन्त सूक्ष्म समरूप (Homogeneous) पदार्थ-रूप आकाश, सम्भव है स्थूलतर अणुओं में विभक्त होकर वायवीय

सुख और दुख

इन्द्रियों से जो सुख मिलता है, वह अन्त में दुख ही लाता है; क्योंकि भोग से और अधिक भोग की तृष्णा होती है और इसका अपिहार्य फल होता है दुख। मनुष्य की कामनाओं का कोई अन्त नहीं, वह लगातार कामना रचता जाता है और जब ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जहाँ उसकी कामनाएँ पूर्ण नहीं होतीं, तो फल होता है दु:ख।

— स्वामी विवेकानन्द

पदार्थों में परिणत हो गया हो। इसके बात उसी शक्ति के प्रभाव से संचालित होकर वायु के अणुओं से ताप तथा प्रकाश (अग्नि) की सृष्टि हुई होगी। अत: देखने में आता है कि वायु से अग्नि के आविर्भाव की बात सम्भावना की सीमा के भीतर ही है।

तन्मात्राओं के तामसिक अंश से स्थूल पंचभूतों की उत्पत्ति की बात भी विचारणीय है। भौतिक-विश्व के उपादान अवश्य ही जड़-स्वभाव हैं, इसीलिये तन्मात्राओं के तामसिक अंश से उनके उत्पत्ति की बात तर्कसंगत ही प्रतीत होती है। प्रकृति की तम:शक्ति ही जड़-पदार्थों में रूपायित हुई है। इस तथ्य के साथ आधुनिक काल के एक विशिष्ट वैज्ञानिक की इस उक्ति का अद्भुत सादृश्य दिखता है – परमाणु मानो एक 'तेजोमय ऊर्जा-कोष' ('Bottled up radiant energy') है।

और एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि विकासवाद के बारे में हिन्दू ऋषियों की धारणा खूब स्पष्ट है। योगसूत्र के रचयिता पतंजलि ने विकासवाद को 'जात्यन्तर-परिणाम' कहकर उल्लेख किया है। विकासवाद के मूल कारण के विषय में आधुनिक विज्ञान अब भी शंकाग्रस्त है, परन्तु इस विषय में हिन्दू ऋषियों की धारणा असन्दिग्ध है। उनके मतानुसार प्रत्येक गण या प्रजाति में नवीन गण या प्रजाति में रूपान्तरित होने की क्षमता निहित रहती है। कारण-अवस्था में लीन यह शक्ति, बीज-शक्ति के समान जब पारिवेशिक अनुकूलता के कारण प्रस्फुटित होने का मार्ग पाती है, तभी वह स्फूर्त होकर नये-नये रूपों की सृष्टि करती है।[४] ऊँची भूमि का जल थोड़ा-सा रास्ता पाते ही अपने आप नीची भूमि की ओर बहता है; किसान केवल थोड़ा-सा अवरोध को हटाकर नीची भूमि को सींचने की व्यवस्था करता है।[५] ठीक इसी प्रकार अनुकूल परिवेश किसी भी प्रजाति के अन्तर्निहित शक्ति (प्रकृति) के निर्गम का पथ खोल देती है; तब वह स्वयं ही प्रवाहित होकर नये-नये रूपों की सृष्टि करता है और इसी प्रकार नये-नये प्रजातियों का आविर्भाव होता है।[६]

हिन्दू शास्त्रों के मतानुसार अव्यक्त से आब्रह्म-स्तम्ब तक की सम्पूर्ण सृष्टि का विकास होता है। प्रलय के समय विश्व-शक्ति संकुचित होकर कारण अवस्था में लीन हो जाती है, इसीलिये सृष्टि के समय विश्व का यह क्रमविकास सम्भव होता है। इस प्रसंग में एक बात और याद रखनी होगी और वह यह कि हिन्दू धर्म के मतानुसार विश्व का यह क्रमविकास ईश्वर के अमोघ संकल्प के बल से ही घटित होता है[७] – उसी से सृष्टि की मूल प्रेरणा आती है। ❖(क्रमश:)❖

४. 'जात्यन्तर-परिणाम: प्रकृत्यापूरात्।' (योगसूत्र, ४/२);
५. वही, ४/३; ६. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ. २०५-०७
७. देखिये – अगला अध्याय

स्वामीजी को नमन

यश मालवीय, इलाहाबाद

भारत माँ की गोद खिले तुम
महके फूल सरीखे,
तुम दुनिया में गये जहाँ भी
अलग-अलग ही दीखे,
तुमने देश धर्म की खातिर
लिया यहाँ अवतार ।।
संस्कृति के पोषक उन्नायक
नमन तुम्हें सौ बार ।।१।।

मानवता के मुकुट बने तुम
सूरज बन कर चमके
बोल तुम्हारे सुनकर बदले
तेवर गोली-बम के
नाव भँवर में आयी जब भी
तुम्हीं बने पतवार ।। संस्कृति. ।।२।।

परमहंस श्रीरामकृष्ण की
सघन स्नेह छाया में
स्वयं देव उतरे थे भू पर
मानव की काया में
तुम बसंत के सुमन बन गये
जब आया पतझार ।। संस्कृति. ।।३।।

तुम नरेन्द्र से हुए विवेका-
नन्द इसी धरती पर
तुमने भारत की वेदी पर
सब कुछ किया निछावर
तुमने ठण्डे प्राणों में भी
धधकाया अंगार ।। संस्कृति. ।।४।।

हम भारतवासी कृतज्ञ हैं
सुनकर गौरव गाथा
बरबस ही श्रद्धा से अपना
झुक जाता है माथा
तुम समुद्र बनकर लहरे थे
मन में लेकर ज्वार ।। संस्कृति. ।।५।।

शुरू ओम् से हुई तुम्हारी
जीवन यात्रा मंगल
पहुँच गयी ओंकार मार्ग पर
ज्यों गंगा की कल-कल
तृषित हृदय के लिए बने तुम
सावन की बौछार ।। संस्कृति. ।।६।।

आत्माराम की आत्मकथा (२०)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उन्हें संन्यास-दीक्षा प्रदान की थी। भक्तों के आन्तरिक अनुरोध पर उन्होंने बँगला भाषा में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ प्रेरक तथा रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। डॉ. डी. भट्टाचार्य कृत इसके हिन्दी अनुवाद की पाण्डुलिपि हमें श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। अनेक बहुमूल्य जानकारियों से युक्त होने के कारण हम इसका क्रमश: प्रकाशन कर रहे हैं। इसके पूर्व भी हम उनकी दो छोटी पुस्तकों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें' तथा 'मानवता की झाँकी' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं – सं.)

शोलापुर में

उस रात उसी गाँव रहकर अगले दिन सुबह ही चल पड़ा। तेरह मील चलने के बाद डेढ़-दो बजे शोलापुर पहुँचा। भूख से पेट में मानो आग लगी हुई थी। एकान्त खोजकर स्नान करने के बाद माधुकरी के लिये गाँव में गया। एक ब्राह्मण के घर जाते ही उन्होंने बड़े प्रेम से भिक्षा दी – दाल, भात और रोटियाँ। सब खाकर झील के किनारे एक धर्मशाला में आश्रय लिया। वहाँ करीब-करीब मौन रहकर ही पाँच-छह दिन निवास किया। आँव से बड़ा कष्ट होने लगा।

बीजापुर तथा होस्पेट में

यह जानकर कि पास ही बीजापुर है – वह ऐतिहासिक शहर देखने चला। पैदल ही जा रहा था, पर एक सज्जन ने टिकट ले दिया। बीजापुर में 'अम्बाजी' के मन्दिर में ठहरा। उस समय कोई ग्यारह-बारह बजे होंगे। पुजारी ने पूजा आदि सम्पन्न करने के बाद मुझे बताया कि यहाँ भिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। मन्दिर के मालिक महालक्ष्मी मिलवाले सेठ सामने ही रहते थे, उनके मकान पर जाने को कहा। गया – सेठ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। आगमन का कारण जानकर सादर निमंत्रित किया और साथ ही भोजन कराया। ये बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। भोजन में कई तरह की मिठाइयाँ, पूरन-पुरी, खूब घी तथा तरह-तरह के व्यंजन थे और अन्त में थोड़ा-सा भात तथा पतली दाल। इस अंचल में पीठे को घी में डुबा-डुबाकर खाते हैं, बंगाल में वैसा नहीं है। बंगाल के लोग अभ्यस्त न होने के कारण इतना घी पचा भी नहीं सकेंगे। मुझे भी थोड़ा भय लगा था, परन्तु सब हजम हो गया।

बीजापुर में तीन दिन ठहरा। घूम-घूमकर बहुत-कुछ देखा – मुसलमानों की महान् कीर्ति-चिह्न – पीतल की एक तोप भी देखी। आधुनिक तोपों की तरह ही उसकी पहुँच चौबीस मील तक थी। वर्तमान में वहाँ मुसलमानों की हालत बड़ी खराब है। इतना बड़ा शहर है, तो भी वहाँ ऐश्वर्य का कोई भी चिह्न नहीं दिखा। काल का प्रभाव है ! सारे लोग निस्तेज हैं, तमोगुण में डूबे हुए हैं।

बीजापुर से एक अन्य गोसाईं साधु के साथ चलकर होस्पेट गया। गोसाईंजी ही गाँव में भिक्षा करने जाते और पकाकर मुझे भी खिलाते। हमारा उद्देश्य था – होस्पेट से किष्किन्धा जाना। बीच के एक गाँव में एक हठयोगी से मुलाकात हुई। वे उस ग्राम के जागीरदार के भाई थे – ग्रैजुएट थे, अच्छे आदमी थे, परन्तु उन्होंने अपने आपको एक महान् आचार्य के रूप में घोषित करना आरम्भ कर दिया था और वर्ष भर में ही अनेक शिष्य आदि बना लिये थे।

किष्किन्धा पर्वत की ओर

होस्पेट में दो दिन बिताकर किष्किन्धा की ओर चला। चार-पाँच मील बाद एक विशाल झील के पास बसा हुआ एक गाँव आया। बाँध के द्वारा इस झील का निर्माण हुआ है। बड़ा मनोरम दृश्य था। इस गाँव से ही भोजन आदि की व्यवस्था करके किष्किन्धा-पर्वत में जाना होता है। वह स्थान इस गाँव से नौ मील दूर है और वहाँ पर श्रीरामचन्द्र तथा हनुमानजी के मन्दिर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वैसे पुजारी भी रहते हैं और बाद में पता चला कि वहाँ साधु-संन्यासियों के लिए सदावर्त भी मिलता है। परन्तु पूछने पर उन लोगों ने 'ना' ही कहा था। सम्भवत: न देना ही उनका उद्देश्य था, अर्थात् वह सदावर्त उन लोगों ने साधुओं के नाम पर अपना पेट भरने के लिए ही बना रखा था। उन लोगों का व्यवहार देखकर मेरे मन में तो ऐसी ही धारणा हुई। या फिर शायद मेरे संन्यासी होने के कारण नहीं दिया, वैरागी होने से देते। अस्तु। उसी गाँव में एक मारवाड़ी व्यवसायी सबको सदावर्त देते हैं – जानकर गोसाईंजी अपने और मेरे लिए लेने गये और कपड़े में बाँधकर ले भी आये।

अपराह्न में तीन-चार बजे हम उस ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे, जहाँ पर श्रीराम रहे थे, जहाँ उनका हनुमानजी के साथ प्रथम परिचय और सुग्रीव के साथ मित्रता हुई थी। नंगा पहाड़ था और पत्थरों में खुदे हुए दो गड्ढों में वर्षा का पानी एकत्र किया हुआ था। आसपास में दो-तीन मील की दूरी तक पानी नहीं मिलता। पहाड़ के दक्षिण में चार-पाँच मील दूर एक प्राकृतिक झील है, जो वहाँ से दिखाई देती है।

वहाँ पहुँचते ही गोसाईंजी स्वयं तो रसोई के लिए लकड़ी आदि इकट्ठा करने चले गये और मुझे चावल-दाल की पोटली पर निगाह रखने को कह गये, क्योंकि मन्दिर में लाल मुँहवाले अति दुष्ट छोटे-छोटे बन्दरों की बहुतायत थी। हमारी तरफ या बनारस-वृन्दावन आदि तीर्थ-स्थानों में जो

लाल मुँहवाले बन्दर देखने को मिलते हैं, उनकी तुलना में इनकी पूँछ काफी लम्बी होती है। होठ गहरे लाल रंग के हैं, मानो लिपिस्टिक लगा रखा हो। बड़े सुन्दर दिखते हैं।

एक अन्य वैरागी ने भी उनके आसन के पास ही आसन लगाया था। वे दाल साफ कर रहे थे। सहसा अपनी औचित्य बुद्धि के विशेष जाग्रत हो जाने के कारण, उनसे जरा नजर रखने को कहकर मैं सूखे उपले बटोरने गया। हे भगवान! लौटकर देखा – वैरागी निश्चिन्त भाव से अपना चावल साफ कर रहा है; मुझसे बोला – "मुझे ख्याल नहीं रहा, तुम लोगों की पोटली बन्दर ले गये।"

सर्वनाश! अब गोसाईंजी आकर मेरी इस मूर्खता के कारण कहीं मुझे मार ही न बैठें! अब उपाय भी क्या था? हमारी सारी चीजें एक खूब मोटे गमछे में बँधी हुई थीं। देखा – मन्दिर के विशाल सभा-मण्डप की छत पर मेरी पोटली को लेकर बन्दरों के बीच 'किच-किच' करते हुए लड़ाई चल रही है। एक ओर की ऊँची दीवाल थोड़ी टूटी थी। उस पर चढ़कर किसी प्रकार छत पर पहुँचा जा सकता है – यह देखकर मैं डण्डा और कुछ पत्थर लिये बड़े कष्ट से वहाँ पहुँचा। दो-चार पत्थर फेंकते ही बन्दर लोग पोटली छोड़कर दूर भागे और मैंने दौड़कर उस पर कब्जा कर लिया। देखा – कपड़ा फट जाने के कारण, चावल तो थोड़े-से ही बरबाद हुए हैं, परन्तु दाल आधे से ज्यादा गिर गई है। कुछ बिखर गये थे और कुछ बन्दरों ने खा लिया था। आटा तो करीब पूरा ही नष्ट हो गया था। जो बचा था, वही लेकर लौटा।

ठीक उसी समय गोसाईंजी भी आ पहुँचे। मेरी निर्बुद्धिता के लिये उन्होंने मुझे खूब डाँटा। इसके बाद वे रसोई बनाने के आयोजन में लग गये। चावल बहुत पुराने थे, निस्सार हो गये थे और उसमें बड़े-बड़े सफेद कीड़े भी लगे हुए थे। दाल चने की थी, पर वह भी कीड़ों की खाई हुई। किसी दाने का आधा बचा था, तो किसी का चौथाई। नमक खूब मैला था और मसालों की डली बँध गई थी। इमली में भी कीड़े भरे हुए थे। यह सब खाद्य-सामग्री उस गाँव के परम धार्मिक व्यवसायी ने दान किया था। "जो चीज किसी के काम की नहीं है, वह साधु के काम आयेगी!" – इस उक्ति का सटीक दृष्टान्त देखकर मैं तो खूब हँसने लगा। गोसाईंजी दाता का श्राद्ध करते हुए उसे साफ करने लगे और बीच-बीच में मुझे भी दो-चार नरम-गरम बातें सुनाने लगे। क्योंकि आटा थोड़ा ठीक था, अर्थात् बिल्कुल खराब नहीं था, वैसे थोड़ा कड़वा हो गया था। वही सब दाल, इमली तथा मिर्च को एक साथ पीसकर अद्‌भुत रसेदार सब्जी बनी। यह कला उन लोगों को भलीभाँति मालूम है। वहाँ तीन रात निवास हुआ। दो दिन गोसाईं ने खिलाया था। इसके बाद वे चले गये और एक रात मैं वहाँ अकेले रहा।

इसके बाद मातंग ऋषि का पर्वत देखा, जहाँ बाली राजा जा नहीं पाते थे और सुग्रीव उनके भय से छिपा रहता था। ऋषि के मन्दिर में कोई भक्त नारियल चढ़ा गया था, भूख मिटाने के लिये उसी को ग्रहण किया। इस मन्दिर में कोई पुजारी न था और यह श्रीराम के मन्दिर से ढाई-तीन मील दूर एक अन्य पहाड़ पर था। बाद में वहाँ से बाली राजा के दरबार या विजयनगर राजा के देव-मन्दिरों के ध्वंसावशेष देखने चक्रतीर्थ गया। इसे अब हम्फी कहते हैं। यहाँ हम्पेश्वर शिव का विशाल मन्दिर है, जो सुन्दर खुदाई के कार्य से अलंकृत है।

नदी में स्नान आदि करके निकल रहा था, तभी एक वृद्धा एक नारियल देकर प्रणाम कर गयी। उसी को खाकर वह दिन बिताया। वहाँ नदी चक्राकार होकर एक पर्वत को घेरे हुए है, स्थान सुन्दर – अत्यन्त सुन्दर है। परन्तु पास में कोई गाँव नहीं है, इसीलिये जो लोग वहाँ रहते हैं, वे अपने गुजर-बसर के लिए यात्रियों पर ही निर्भर करते हैं। वहाँ वैष्णवों का एक मठ है, परन्तु वे लोग बड़े कट्टर हैं, दूसरों को अन्न नहीं देते। अपनी व्यवस्था हो जाय, तो निःसन्देह वह स्थान साधना के लिये बड़ा उपयुक्त है।

होस्पेट में मानवता की झाँकी

वहाँ दो दिन रहा। खाने-पीने में काफी अनियमितता तथा अनाहार के कारण हम्पी में मुझे बड़ा भयंकर पेचिश का रोग हुआ। फिर यह सोचकर होस्पेट की ओर चल पड़ा कि वहाँ अस्पताल है, चिकित्सा की सुविधा होगी। दिन-रात मिलाकर कुछ २४-२५ बार शौच होता था। शरीर क्षीण, अति दुर्बल हो गया था और ऊपर से अन्न का अभाव तो था ही। बड़े कष्टपूर्वक सारे दिन पैदल चलकर शाम के समय होस्पेट के बाहर लिंगायत लोगों के धर्मशाले में पहुँचा। रात को नींद नहीं आयी – घण्टे-घण्टे पर शौच होता था और पेट भी बिल्कुल खाली था। एकदम कमजोर हो गया था।

सुबह सोच रहा था कि क्या करूँ, तभी ग्वालियर का एक आदमी आ पहुँचा। वह सारंगी बजाकर भिक्षा माँगते हुए घूमता था और उसी धर्मशाले में ठहरा हुआ था। उसने पूछा – भिक्षा आदि की क्या व्यवस्था हुई है? मेरी अस्वस्थता की बात और भोजन की भी कोई व्यवस्था नहीं हुई है – सुनकर वह बोला – "तो फिर आप यही पर रहियेगा। मैं १०-११ बजे के भीतर ही बाजार से लौटूँगा और तब भोजन बनाऊँगा। भोजन तो उसने बनाया, परन्तु जब खाने गया तो देखा कि भात और बहुत-से मिर्च मिलाकर उसका झोल बनाया था, वैसे उसमें घी भी काफी डाला गया था। भाग्य में जो लिखा होगा सो होगा, सोचकर खूब खाया। बड़े आश्चर्य की बात है, भोजन के बाद केवल दो-तीन बार शौच होकर ही बन्द हो गया अर्थात् पेचिश लगभग ठीक हो गया। बाद में पता

चला कि मिर्च (कैप्सिकाम) पेचिश की एक पुरानी दवा है।

वैसे अगले दिन भोजन के बाद जो शौच हुआ, उसमें केवल सफेद आँव ही था। लगभग एक महीने वैसा ही होता रहा। जो भी खाता, वह प्राय: पूरा आँव में परिणत हो जाता। बेल्लारी में चिकित्सा तथा पथ्य की थोड़ी सुविधा हो सकती है, सोचकर बेल्लारी फोर्ट गया।

बेल्लारी का किला

रात को पहुँचकर स्टेशन के पास ही एक धर्मशाले में ठहरा। सुबह अस्पताल जाने के निमित्त निकला और बाजार से होकर जाते समय देखा – एक चिकित्सालय के बड़े से बोर्ड पर लिखा हुआ था – श्रीरामकृष्ण फार्मेसी। कुतूहल हुआ – हो सकता है डॉक्टर ठाकुर का भक्त हो। भीतर घुसते ही सामने स्वामीजी तथा ठाकुर का चित्र टँगा देखकर आशा हुई कि शायद सम्मानपूर्वक दवा आदि मिल जायेगी। मन-ही-मन संकल्प किया – यह नहीं बताऊँगा कि मिशन के साथ मेरा कोई सम्बन्ध भी है। यदि ठाकुर की इच्छा से यहाँ आ गया हूँ, तो सारी सुविधा अपने आप ही हो जायेगी।

"जय ठाकुर, जय माँ" – कहकर डॉक्टर के बैठने के कमरे में गया और उनका इशारा पाकर सामने की बेंच पर बैठ गया। वे एक रोगी को पर्चा लिखकर दे रहे थे। एक अन्य सज्जन भी वहाँ बैठे हुए थे। लिखना हो जाने पर मुझसे सादर पूछा – "क्या चाहते हैं?" मैं बोला – "आँव से पीड़ित हूँ। क्या कोई दवा दे सकेंगे?" डॉक्टर – "कहाँ से आये हैं, कितने दिन से यहाँ पर हैं और मेरे औषधालय की सूचना किसने दी?" आदि तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। सब प्रश्नों का समुचित उत्तर दिया। अन्तिम प्रश्न के उत्तर में बोला – "श्रीरामकृष्ण फार्मेसी लिखा देखकर अन्दर आने का साहस हुआ।"

डॉक्टर ने तत्काल पूछा – "किस प्रदेश के हैं?" (बातें हिन्दी में हो रही थी)। मैं बंगाल से आया हूँ – सुनकर पूछने लगे – "क्या आप रामकृष्ण मठ के हैं?" तब गोपनीयता बनाये रखना सम्भव न हुआ, सब बताने को बाध्य हुआ। उन्होंने ज्योंही सुना कि मैं उसी मठ का एक अनुयायी हूँ, वे खूब उत्फुल्ल होकर उठे और मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहने लगे – "मेरा अहोभाग्य है कि आप अनायास ही आ गये हैं। जिस दिन यह दुकान खुली और प्रैक्टिश आरम्भ किया, उसी दिन से कितनी बार मन में यह इच्छा हुई कि यदि ठाकुर के अनुयायी स्वामीजी के मठ के कोई संन्यासी यहाँ आते, तो बड़ा अच्छा होता। स्वामीजी मेरे जीवन के आदर्श व्यक्ति हैं। मैं यथासम्भव उन्हीं के उपदेशों के अनुसार अपने जीवन को गढ़ने की चेष्टा कर रहा हूँ। आज का दिन धन्य है कि आप अनायास ही यहाँ पधारे हैं। स्वामीजी ने मेरी प्रार्थना पूरी की है। मद्रास के स्वामी सर्वानन्द जी के साथ मेरा विशेष परिचय है। अपने छात्र-जीवन में गीता आदि सुनने के लिये उनकी कक्षा में जाता था।"

फिर कहने लगे – "आपका रोग न खाने से हुआ है। कुछ दिन नियमित रूप से भोजन करने से आप ठीक हो जायेंगे, दही-चावल ही आपकी दवा है।" करीब साढ़े ग्यारह बजा देख मुझसे पूछा – "आपका भोजन हुआ है?" "नहीं हुआ है" – जानकर तुरन्त एक आदमी के साथ मुझे पास ही स्थित एक ब्राह्मण के होटल में भेजा। खूब दही-भात खाकर उनके पास लौटा। पता चला कि उनकी पत्नी मायके गई हुई थी, इसलिए वे अकेले रहते और उसी होटल में खाते थे।

ठाकुर-स्वामीजी के बारे में कई तरह की चर्चा होने लगी। दूसरे सज्जन तब भी बैठे हुए थे और वे भी बातों में काफी रस ले रहे थे। परन्तु हिन्दी न जानने से उन्हें थोड़ी कठिनाई हो रही थी। डॉक्टर कभी कन्नड़ भाषा में, तो कभी अंग्रेजी में उन्हें समझा रहे थे। परन्तु एक जगह भावार्थ को ठीक न समझ पाने के कारण वे अंग्रेजी में उन्हें थोड़ा गलत समझा रहे थे। मैंने जब अंग्रेजी में उनकी भूल को सुधार कर बताया, तो दोनों ही आश्चर्यचकित होकर बोले उठे – "अरे, आप तो अंग्रेजी जानते हैं! अभी तक आपने बताया नहीं, कितने आश्चर्य की बात है! हम सोच रहे थे आपने अंग्रेजी की लिखाई-पढ़ाई नहीं की है।"

मैंने कहा – "यदि किसी भारतीय भाषा में बातें करना सम्भव हो, तो मैं विदेशी भाषा का उपयोग करना उचित नहीं समझता। आप हिन्दी जानते हैं और ये भी थोड़ा समझते हैं, इसलिए हिन्दी में ही बातें कर रहा था।" दोनों खूब हँस रहे थे, क्योंकि इसके पूर्व वे आपस में कन्नड़ में इस बात पर चर्चा कर चुके थे। उन दूसरे सज्जन ने कहा था कि लग रहा है कि साधु अंग्रेजी जानते हैं। डॉक्टर ने कहा था – नहीं।

लगभग दो बज रहे थे। वे सज्जन बोले – "स्वामीजी, इनके घर में कोई नहीं है। आप दोनों को ही कष्ट होगा। मेरे यहाँ चलिए, आपको कोई असुविधा नहीं होगी और मेरा सत्संग भी हो जायेगा।"

मैंने कहा – "मैं तो धर्मशाले में ठहरा हूँ। यदि किसी मन्दिर में एकान्त कमरा मिले, तो शरीर स्वस्थ कर लेना चाहूँगा। डॉक्टर साहब पर बोझ नहीं बनना चाहता।"

डॉक्टर – "यह क्या कह रहे हैं आप? आपके आने से मुझे कितना आनन्द हुआ है! यदि पत्नी होती, तो कदापि आपको अन्यत्र नहीं जाने देता। आपका शरीर अस्वस्थ है, इस समय नियमित सेवा तथा विश्राम की जरूरत है। घर में कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए मैं इनकी बात पर राजी हो गया था, ये बड़े अच्छे तथा धार्मिक व्यक्ति हैं।"

अत: श्री मुदलियार के साथ जाने को राजी हुआ। उनका मकान बेल्लारी किले से ज्यादा दूर नहीं था। मुझे एक अलग कमरा दिया और पति-पत्नी दोनों ने ही पन्द्रह-बीस दिनों तक मेरी खूब सेवा की। शरीर काफी स्वस्थ हो चला था, पर तब भी सुबह के शौच में आँव आता था। दवा फिर नहीं ली। डॉक्टर के साथ दो बार भेंट हुई थी, पर तब मन की अवस्था ऐसी थी कि बात करना अच्छा नहीं लगता था। चुपचाप एक आराम-कुर्सी पर बैठा रहता था।

वे सज्जन सुबह और शाम एक घण्टा धर्मचर्चा कर जाते। भाषा न जानने के कारण उनकी पत्नी केवल खाना देकर तथा बाकी कार्य करके चुपचाप चली जातीं। और किसी से मुलाकात नहीं की और न ही इसकी इच्छा ही हुई। उनका एक पुत्र था, देखने में ठीक 'भूत की तरह' – लम्बा मुँह, टेढ़ी गर्दन, दुबले तथा लम्बे हाथ-पाँव, गोल-गोल उल्लुओं जैसी आँखें और गूँगा भी था। दिन में वह चुपचाप कमरे में बैठा या सोता रहता और रात होते ही कभी छत पर जाता, कभी रास्ते पर निकलता और 'गूँ-गूँ' आवाज करता।

उनके यहाँ जाकर पहले दिन तो लड़के के बारे में कुछ मालूम न था। उन्होंने छत पर मेरे शौच के लिए व्यवस्था कर दी थी। (दिन में मेहतर आकर उठा ले जाता था।) रात में करीब बारह बजे जब शौच करने गया, तो देखा कि कोई लम्बे-लम्बे डग भरते धीरे-धीरे मेरी ओर आ रहा है। डर से दिल काँप गया। सोचा – निश्चय ही यह भूत है। मैंने कहा – "ऐ, तुम कौन हो?" मेरे बोलते ही वह दौड़कर नीचे चला गया। मेरे गले की और उसके दौड़ने की 'धम-धम' आवाज से स्त्री की आँखें खुल गई। उन्होंने पति को मेरे पास भेजा, तब मालूम हुआ कि वह भूत न होकर उनका लड़का था। उसके स्वभाव के बारे में भी जानकारी मिली। उसके बाद यह लड़का कभी-कभी चुपचाप झाँककर मुझे देखता; रात को भी, और मेरी नजर से नजर मिलते ही भाग जाता। उन लोगों का तथा वहाँ के मांत्रिकों का विश्वास है कि किसी भूत ने उसकी देह का आश्रय ले रखा है और काफी मंत्र-तंत्र करके भी उसे निकाला नहीं जा सका है। वे सज्जन बोले – "इसके होने के बाद चार-पाँच बच्चे मर चुके हैं। जो भी कार्य करने की चेष्टा करते हैं, उसमें विघ्न आता है, हानि होती है। और यदि कोई बीमार हो जाये, तो उसे बहुत खुशी होती हैं। वह खिल-खिलाकर हँसता और नाचता है। जिस किसी की मृत्यु हुई है, इसने मृत्यु के दिन उसको बलपूर्वक स्पर्श किया था और उस दिन खूब आनन्द में था। केवल माता-पिता यदि अस्वस्थ हों, तो वह बड़ा दुखी होता है। खाना नहीं खाता, केवल रोता रहता है।" मैंने सोचा था कि शायद मुझे भी स्पर्श करेगा। वह तो नहीं किया, पर नित्य ही वह मेरी अनुपस्थिति में मेरे कपड़ों को छूता और अन्यत्र रख देता। हाँ, भोजन या काफी तैयार हो जाने पर वह मेरे कमरे की ओर इशारा कर-करके माँ से मुझे शीघ्र देने के लिये कहता। गृहस्वामी ने यह बात भी कही। अद्भुत !

उनके मकान में रहते पन्द्रह-बीस दिन हो चुके थे। एक दिन सुबह बाहर बरामदे में बैठा दातुन कर रहा था कि एक सज्जन आये और कहने लगे – "स्वामीजी, आप इनके घर में अनेक दिन तो रह चुके, अब कुछ दिन मेरे घर चलिए। मैं पास मे ही रहता हूँ। आपको कोई असुविधा नहीं होगी।" मैंने कहा –"गृहस्वामी की अनुमति से ही जाऊँगा।"

बाद में वे आये और गृहस्वामी की सहमति से मैं उनके घर गया। वे बेल्लारी में मिलिटरी के राशन विभाग में मुख्य भण्डार-प्रभारी थे। उस समय वहाँ करीब तीन हजार तुर्की युद्धबन्दी थे, इसलिए उन्हें काम भी बहुत था। केवल रात को दस-ग्यारह बजे ही पाँच-दस मिनट के लिए मेरे साथ मुलाकात होती। उनके यहाँ भी करीब बीस-पचीस दिन रहा। उनकी पत्नी तथा छोटी-सी आठ वर्ष की कन्या ने खूब सेवा की थी। कमरे में तख्त का एक झूला था। उसी पर सोता था और दिन में बैठे-बैठे झूलता था। जितने दिन रहा, न तो किसी के साथ परिचय करने की इच्छा हुई और न कहीं घूमने जाने की। चुपचाप बैठे रहना बहुत अच्छा लगता था। कभी-कभी किले के नीचे तालाब के किनारे जाकर बैठा रहता।

उसके बाद शरीर काफी स्वस्थ लगता देख ऋषीकेश जाकर कुछ दिन चुपचाप रहने की इच्छा हुई और गृहस्वामी को बताते ही उन्होंने ऋषीकेश तक का किराया और एक कुटिया बनाने के लिये पचहत्तर रुपये दिये। धन्य है उनकी उदारता ! आवश्यकता होने पर और भी रुपये मँगवा लेने को कहा। परन्तु माँ की कृपा से अब तक उसकी जरूरत नहीं पड़ी। गदग तक का टिकट लिया, उद्देश्य यह था कि रात में वहीं ठहरकर अगले दिन दूसरी गाड़ी में बैठूँगा, ताकि शरीर को ज्यादा strain (श्रान्ति) न हो।

❖ (क्रमशः) ❖

श्रीमाँ के पुण्य सान्निध्य में

भगिनी देवमाता

माँ श्री सारदा देवी दैवी मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। हमारे लिए बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

मेरी कोलकाता-यात्रा एक तीर्थयात्रा के समान थी। कोलकाता के पास ही गंगातट पर वह मन्दिर है, जहाँ श्रीरामकृष्ण ने साधना की और उपदेश दिये। गंगा के दूसरे तट पर थोड़े दक्षिण की ओर श्रीरामकृष्ण संघ का प्रमुख मठ है। और सर्वोपरि है बागबाजार का वह साधारण मकान, जिसमें इस युग की एक श्रेष्ठ सन्त निवास करती हैं। उनका नाम है सारदामणि देवी, पर वे 'श्रीमाँ' या 'मातादेवी' के नाम से ही सुपरिचित हैं। बंगाल की मेरी यह तीर्थयात्रा उनसे मिलने के लिए ही हुई थी।

चेन्नै पहुँचने के कुछ दिनों बाद ही मुझे उनका यह स्नेहिल पत्र मिला था –

प्रिय देवमाता,

ठाकुर के प्रति तुम्हारी भक्ति के बारे में जानकर मैं बड़ी आनन्दित हूँ। आशीर्वाद देती हूँ और ठाकुर से प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारा हृदय अनन्त भक्ति से परिपूर्ण हो। तुम दीर्घजीवी होओ और मेरी अन्य सन्तानों के साथ चिर आनन्द में निमग्न रहो। ....

मैं सकुशल हूँ।

तुम्हारी स्नेहमयी
माँ

पत्र बंगला में लिखा है – स्वामी रामकृष्णानन्द ने उसका आंग्ल भाषा में अनुवाद कर दिया था।

मेरी तीर्थयात्रा आधुनिक प्रकार की थी – प्रथमतः तो यह ट्रेन से और फिर जूते पहनकर हुई। परन्तु मैं प्राचीन रीति का पालन करने की चेष्टा कर रही थी और अपने साथ कुछ प्रणामी की चीजें भी ले जा रही थी। भारतीय धार्मिक रीति के अनुसार – किसी महापुरुष के पास खाली हाथ जाना अनुचित माना जाता है। सामान के रूप में मेरे साथ था – संघ के वरिष्ठ संन्यासियों के लिए एक नये सूती वस्त्र में बँधी करघे पर बनी किनारीवाले वस्त्रों की एक बड़ी पोटली, एक बड़ी टोकरी भरकर केवल दक्षिण भारत में पाये जानेवाले दुर्लभ जाति के सन्तरे, ट्रेन में उपयोग हेतु बिस्तर, लोहे का एक संदूक, एक अन्य टोकरी में फल और कुछ किताबें। डिब्बे के मेरे सहयात्री मेरे सामान को कटाक्ष की दृष्टि से देख रहे थे। सामान तो वे भी ले जा रहे थे, पर उनके साथ बिलायती सामान था और मेरे साथ भारतीय – दोनों में बड़ा अन्तर था।

मद्रास से कोलकाता – अधीरता के साथ एक-एक कर चालीस घण्टे बिताने के बाद अगले दिन दोपहर से कुछ पहले मैं वहाँ पहुँची। स्टेशन पर भगिनी क्रिस्टिन मुझे लेने आयी थी। वह मुझे (बागबाजार) के बालिका विद्यालय में ले गयी, जहाँ माँ का स्निग्ध प्रेम मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। माँ ने मेरे रहने के लिये अपने मकान में ही ऊपरी मंजिल पर एक कमरा तैयार रखा था। वहाँ से बीच के घरों के छतों के पार गंगाजी का दर्शन होता रहता था। परन्तु उस मकान में कई लोगों को संक्रामक रोग हो जाने के कारण मेरे लिये स्कूल भवन में ही सोने की व्यवस्था अधिक सुरक्षित समझी गयी। भगिनी निवेदिता और भगिनी क्रिस्टिन ने मुझे अत्यन्त स्नेह तथा उदारतापूर्वक मेरी देखभाल की थी और मुझे उनके साथ रहकर बड़ी खुशी हुई, परन्तु (सबको यही चिन्ता थी कि कोलकाता आकर यहाँ की जलवायु की अनभ्यस्त होने के कारण कहीं मैं हैजा या चेचक जैसे किसी संक्रामक रोग से ग्रस्त न हो जाऊँ) रात के समान ही दिन में भी माँ का सान्निध्य मुझे नहीं मिलेगा – यह बात सोचकर मैं दु:ख का भी संवरण नहीं कर पा रही थी।

विद्यालय से अनेक मकानों के बाद माँ का घर स्थित था। मुझे बताया गया था कि कोई आकर मुझे लिवा जायेगा, लेकिन मैं इसके लिए प्रतीक्षा नहीं कर सकी। अतः एक छोटी-सी टोकरी में अपने साथ लाये कुछ सन्तरों तथा उपहार की अन्य चीजें लेकर मैं स्वयं ही मार्ग ढूँढ़ने निकल पड़ी। एक अपरिचित सज्जन ने मुझे इतना भारी सामान लिये परेशान होते देखकर अपने लड़के से मेरा सामान पहुँचा देने को कहा। हम लोग 'माँ के घर' पहुँचे। मकान नया था। माँ दुमंजले पर रहती थीं – निचली मंजिल में वहाँ से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका (उद्बोधन) का कार्यालय था।

मैं शीघ्रतापूर्वक मुख्य द्वार तथा बरामदे को पार करके एक चौड़ी सीढ़ी से ऊपर गयी। पूजागृह के पीछे के कमरे में मैंने माँ को अकेली पाया और अपनी प्रणामी के साथ मैं

उनके चरणों में अवनत हो गयी। मृदु विस्मय के साथ उन्होंने दो बार मेरे नाम का उच्चारण किया। इसके बाद उन्होंने आशीर्वाद देते हुए अपना हाथ मेरे सिर पर रख दिया। उनके इस स्पर्श के फलस्वरूप मेरे अन्तर से नवजीवन की तरंगों ने उठकर मेरे पूरे अस्तित्व को सराबोर कर दिया।

वे मुझे मन्दिर की वेदी के पास ले गयीं। वहाँ प्रणाम करने के बाद मैं नीचे बैठ गयी; और वे विश्राम करने के लिए पास ही लेट गयीं। एक संन्यासिनी आकर उनका शरीर दबाने लगीं – भारत में प्रेमपूर्ण सेवा की यही प्रचलित रीति है। यह देखकर मेरे मन में प्रश्न उठा – "किसी दिन क्या मैं भी उनकी इसी प्रकार सेवा करने का सौभाग्य पा सकूँगी।" मेरे मन में यह विचार उठने की देर थी कि उन्होंने इशारे से मुझे पास बुलाकर उन संन्यासिनी का स्थान ग्रहण करने को कहा। उनके कोमल सुडौल श्रीअंगों के स्पर्श का सौभाग्य पाना – एक दुर्लभ आशीर्वाद था। लेकिन संगमरमर के फर्श पर लगातार घुटने टेके रहना मेरे लिए कष्टकर हो उठा। एक बार फिर उन्होंने मेरे मन की बात जानकर मुझे अपने पास बिठा लिया। हम दोनों एक-दूसरे की भाषा नहीं जानती थीं। परन्तु चूँकि वहाँ कोई दुभाषिया न था, अत: वे हृदय के गहन नि:शब्द भाषा में अपने भाव व्यक्त कर रही थीं और एक-दूसरे की बात समझने में हमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

माँ ने मुझे तत्काल अपने दैनन्दिन कार्यों में लगा लिया और अपने कमरों की देखभाल का कार्य दिया। मैं प्रतिदिन खूब सबेरे आकर उनका बिस्तर ठीक-ठाक कर देती और सब कुछ सजा देती। यह सब करते समय मैंने देखा कि सामने के बरामदे की ओर खुलनेवाली पाँच बड़ी खिड़कियों के काँच पेंट आदि के धब्बों के कारण धुँधले हो गये हैं। हमेशा खुली रहने के कारण उन खिड़कियों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। एक दिन सुबह मैं अपने साथ थोड़ा-सा साफ कपड़ा और बन्दर-मार्का साबुन की एक टिकिया ले गयी और काँच के उन पल्लों को खूब साफ कर दिया। इसे देखकर माँ बड़ी आनन्दित हुईं। उस दिन ज्योंही कोई भी आता, माँ एक खिड़की को बन्द कराकर उसे दिखातीं कि देखो तो, इसके शीशे कैसे चमचमा रहे हैं!

एक अन्य दिन कोई उनके लिये दो चुने हुए आम लेकर आया। माँ की इच्छा थी कि उन्हें मैं ले लूँ। लेकिन मैं जानती थी कि ये इस मौसम के अन्तिम आम हैं और माँ को आम बहुत पसन्द हैं, अत: मैंने उन्हें लेने से मना कर दिया। मैं बोली – "यदि आप ही इन्हें रखें, तो मुझे अधिक आनन्द होगा।" माँ ने तत्काल कहा – "अच्छा बताओ, इन्हें मैं रखूँ तो तुम्हें अधिक आनन्द होगा, या तुम्हारे रखने से मुझे अधिक आनन्द होगा? मेरे मुख से सहज ही निकल पड़ा – "माँ, मेरे लेने से आपको अधिक आनन्द होगा, क्योंकि आपका हृदय मुझसे बहुत बड़ा है।" और लगा कि यह उत्तर सुनकर माँ बड़ी खुश हुईं।

उनके मन में हर प्राणी के लिए असीम स्नेह-आकुलता थी। मानवीय मापदण्ड से उसे मापा नहीं जा सकता। उनके पत्रों में इसका आभास है। अनिच्छापूर्वक ही उनमें से कुछ अंश मैं यहाँ दे रही हूँ। वे इतने अन्तरंग हैं कि उन्हें व्यक्त करना उचित नहीं लगता, तथापि उनकी भावनाओं के इस चित्र से मैं अन्य लोगों को वंचित नहीं रखना चाहती।

मेरी दुलारी बेटी,

तुम्हारे प्रेमपूर्ण पत्र यथासमय मिले। समय से उत्तर न दे पाने के लिये कृपया मुझे क्षमा करना। तुम्हारी याद मुझे हमेशा आती रहती है। तुम जिस स्थान पर बैठकर ध्यान किया करती थी, वहाँ दृष्टि पड़ते ही तुम्हारा प्रिय चेहरा मेरे मन में उभर आता है। इस घर के सभी लोग हमेशा तुम्हारे बारे में बातें करते रहते हैं। तुम्हारे पिछले पत्र से यह जानकर मुझे खुशी हुई कि स्वामी रामकृष्णानन्द का स्वास्थ्य अब पहले से अच्छा है। यहाँ सभी कुशल से हैं।

आशीर्वाद सहित

तुम्हारी परम स्नेहमयी

माँ

मेरी दुलारी बेटी,

तुम्हारा १ नवम्बर का पत्र मिला। पत्र पाकर जो खुशी हुई, उसे कहकर नहीं बता सकती। मैं जलवायु-परिवर्तन के लिए यहाँ (पुरी में) आयी हुई हूँ। यहाँ एक-दो महीने और रहूँगी। आशा करती हूँ कि तुम बीच-बीच में पत्र लिखती रहोगी। मैं अब पहले से स्वस्थ महसूस कर रही हूँ। यह जानकर मैं विशेष रूप से आनन्दित हुई हूँ कि बॉस्टन केन्द्र नये स्थान में ले जाया गया है और ठाकुर का भाव दिनो-दिन फैलता जा रहा है। मेरी मधुर बेटी, मुझे हमेशा तुम्हारी याद आती है। आशा करती हूँ कि अब तुम पूरी तरह कुशल से हो। मेरा स्नेहपूर्ण आशीर्वाद लेना।

तुम्हारी स्नेहमयी

माँ

मेरी दुलारी बेटी,

तुम्हारे सारे पत्र मुझे यथासमय मिले हैं। उनसे मुझे कितना आनन्द मिला, यह मैं शब्दों में नहीं बता सकती। समय बिताने का तुम्हारा तरीका बड़ा अच्छा है। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि तुम दिनो-दिन स्वस्थ और सबल होती जा रही हो। ... मेरी दुलारी बेटी, तुम निश्चय ही जानना ठाकुर तुम्हारे साथ हैं और सदैव तुम्हारी देखभाल कर रहे हैं। मैं भी हमेशा तुम्हारी याद करती रहती हूँ। इसी महीने

की १६ तारीख को मैं गाँव जा रही हूँ। ... यहाँ सभी कुशल से हैं। मेरा प्रेम और आशीर्वाद लेना।

तुम्हारी परम स्नेहमयी
माँ

माँ अपने हाथ से पत्र नहीं लिखती थीं। वे अपने साथ रहनेवाली किसी महिला को बोलकर लिखाती थीं। निश्चय ही उनकी पत्र-लेखिका बड़ी विश्वसनीय होती थी और माँ जो बोलती थीं, ठीक वैसा ही लिख देती थी, क्योंकि एक बार मेरे पास एक पत्र आया, जिस पर लिखा था 'मेरी प्रिय देवमाता को' और बाकी पता किसी अन्य ने लिख दिया था। पत्र इस प्रकार था –

बागबाजार, कोलकाता, भारत

मेरी प्रिय बेटी,

तुम्हारा १६ अगस्त का पत्र मिला। जब मैं तुम्हारे बारे में सोच रही थी, ठीक तभी तुम्हारा पत्र मिला। अत: तुम सहज ही कल्पना कर सकती हो कि मुझे कितनी खुशी हुई होगी।

तुम्हारे पत्र में वहाँ के कार्य का जो विवरण है, उसे पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। परमानन्द[1] और वाशिंग्टन तथा बॉस्टन के अन्य सभी भक्तों को मेरा स्नेह तथा आशीर्वाद कहना। तुम पुन: स्वस्थ हो गयी हो और हार्दिक उत्साह के साथ ठाकुर का कार्य कर रही हो, यह जानकर मुझे और भी खुशी हुई। अब मैं पहले की अपेक्षा थोड़ी अधिक स्वस्थ हूँ।

सारदानन्द, योगीन-माँ, गोलाप-माँ, सत्यकाम[2], कुसुम देवी[3], गणेन, निवेदिता और सुधीरा ठीक हैं। वे बहुधा तुम्हारे बारे में बातें करते हैं।

मेरी दुलारी बेटी ! मेरा स्नेह और आशीर्वाद जानना।

तुम्हारी स्नेहमयी
माँ

नीचे के दोनों पत्र भी मेरे अमेरिका लौटने के बाद मुझे लिखे गये थे –

(१) स्वामी परमानन्द – स्वामी विवेकानन्द के शिष्य।
(२) स्वामी सत्यकामानन्द – श्रीमाँ के तत्कालीन सेवकों में एक थे। स्वामी त्रिगुणातीतानन्द के भाई, पूर्वाश्रम का नाम था अशुतोष मित्र।
(३) कुसुम देवी – माँ की सेविका। 'गोपाल-की-माँ' की शिष्या। गोपाल-की-माँ के चरणों में बैठी निवेदिता का जो सुपरिचित चित्र है, उसमें कुसुम देवी हाथ में पंखा लिए हुए हैं। – सम्पादक

सुन्दर विलास, चेन्नै, भारत

मेरी दुलारी बेटी,

तुम्हारे १७ जनवरी और ९ फरवरी के दोनों पत्र मिले। वाशिंग्टन और बॉस्टन के कार्यों का विवरण मुझे बड़ा रोचक लगा; भविष्य में और भी जानने की इच्छा है। ...

दो महीने कोठार में रहने के बाद यहाँ (चेन्नै) आयी हूँ। यहाँ तुम जिस घर में रहती थी, उसी में ठहरी हूँ। यहाँ डेढ़ महीने से हूँ। इस बीच मैं रामेश्वरम्-दर्शन करने गयी थी। वहाँ चार दिन रही। बलराम बाबू के परिवार के लोग यहाँ मेरे साथ हैं। सभी कुशलपूर्वक हैं, इनके परिवार की केवल एक महिला आंत्रिक ज्वर से पीड़ित है। उसके स्वस्थ होते ही हम लोग कोलकाता के लिये रवाना हो जायेंगे। कल मुझे बैंगलोर जाना है और वहाँ एक-दो दिन बिताकर मैं यहीं लौट आऊँगी।

स्वामी रामकृष्णानन्द थोड़े स्वस्थ हैं। अन्य सभी साधु सकुशल हैं।

तुम्हें, स्वामी परमानन्द और वाशिंग्टन तथा बॉस्टन के सभी भक्तों को मेरा आशीर्वाद।

तुम्हारी स्नेहमयी
माँ

ग्राम जयरामबाटी, जिला हुगली

मेरी दुलारी बेटी देवमाता,

बहुत आनन्द के साथ ११ जुलाई के तुम्हारे पत्र का प्राप्ति-संवाद दे रही हूँ। परमानन्द अभी भी भारत नहीं पहुँचे हैं। तुम्हारे स्वास्थ्य में सुधार की बात जानकर मैं बड़ी खुश हुई। योगीन माँ, गोलाप-माँ और बाकी सभी लोग सकुशल हैं। मैं भी इस समय ठीक हूँ। आशा है तुम सभी लोग वहाँ अच्छी तरह हो। ...

अत्यन्त दु:ख के साथ तुम्हें सूचित कर रही हूँ कि मेरे परम प्रिय बेटे शशी (स्वामी रामकृष्णानन्द) का देहान्त के रूप में मुझे बड़ी अपूरणीय क्षति हो गयी है। पिछले अगस्त में वह इस धरती से विदा हो गया।

तुम सभी को मेरे आशीर्वाद

तुम्हारी परम स्नेहमयी
माँ

❖ (क्रमशः) ❖

दैवी सम्पदाएँ (३) ज्ञानयोग में निष्ठा

भैरवदत्त उपाध्याय

(गीता में आसुरी गुणों के साथ ही दैवी गुणों का भी निरूपण किया है। विद्वान् लेखक ने इस लेखमाला में उन्हीं गुणों का सविस्तार विश्लेषण किया है और विभिन्न शास्त्रों व आचार्यों के विचारों के आधार पर बताया है कि इन्हें अपने जीवन में कैसे लाया जाय। – सं.)

❖ (उत्तरार्ध) ❖

कर्मयोगो विशिष्यते –

यों तो कर्म-संन्यास और कर्मयोग – दोनों ही उत्तम हैं, परन्तु कर्मयोग कर्म-संन्यास से बढ़कर है। (५/२) लोकसंग्रह की भावना से किया गया कर्म भवबन्धन का हेतु नहीं बनता। यदि मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्मासक्ति-रूप कर्तृत्व-अभिमान और फलासक्ति-रूप भोकृत्व-अभिमान को छोड़कर भगवान को फल का अर्पण करते हुए यज्ञ-भावना से कर्म किया जाय, तो वह कर्म कर्म नहीं रह जाता, वह तो कर्मयोग हो जाता है। फिर वह बन्धन का कारण नहीं होता। जब बुद्धि कर्म के कारण-रूप कामना और उसके फल – दोनों में निर्विकार भाव से समत्वमयी हो जाती है, तो कर्म निर्बीज हो जाता है। सिद्धि और असिद्धि में समभाव रखते हुए राग और द्वेष का त्याग कर योग में स्थित होकर किया गया कर्म पाप तथा पुण्यों से परे होता है। जो अनासक्त, नित्यतृप्त और निराश्रय है; वह कर्म में प्रवृत्त होने पर भी कुछ नहीं करता। जिसने आशाओं और परिग्रहों को छोड़ दिया है तथा अन्त:करण के सहित इन्द्रियों को जीत लिया है, वह केवल शरीर सम्बन्धी कर्म को करता हुआ भी पाप को प्राप्त नहीं होता। यज्ञ-भावना से किये गये कर्म कर्ता को लिप्त नहीं करते। उसके लिए तो सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। कर्मयोगी का इस संसार में न तो कर्म करने से और न कर्म छोड़ने से कोई अर्थ होता है। उसका किसी प्राणी से स्वार्थ का सम्बन्ध भी नहीं होता, जिससे कि वह कर्म में प्रवृत्त हो। जिस प्रकार वेदान्त के चार महावाक्य हैं – **'प्रज्ञानं ब्रह्म'**, **'तत्त्वम् असि'**, **'अहं ब्रह्मास्मि'** और **'अयम् आत्मा ब्रह्म'** – उसी प्रकार कर्म के भी चार महावाक्य हैं –

(१) ते कर्मणि एव अधिकारः – तेरा कर्म करने में ही अधिकार है। **(२) कदाचन फलेषु अधिकारो मा** – तेरा फलों में अधिकार कभी नहीं है। **(३) कर्मफलहेतुः मा भूः** – तेरे कर्म फलों के हेतु न हों अथवा तू कर्मफल का हेतु मत बन, क्योंकि कर्मफल का हेतु तो परमात्मा ही है। **(४) ते अकर्मणि संगो मा भूः** – अकर्म में – निषिद्ध अथवा सकाम कर्म में तेरी आसक्ति न हो।

कर्म का प्रवाह अनादि और अनन्त है। जब ब्रह्माजी ने अपनी इस मानव-प्रजा का सृजन किया, तभी उन्होंने यज्ञ-रूप कर्म की रचना कर इष्ट कामनाओं की पूर्ति करनेवाले इस कर्म को करने का आदेश दे दिया। (३/१०) यज्ञ कर्म से उत्पन्न है और कर्म ब्रह्म से उद्भूत है – **यज्ञः कर्मसमुद्भवः** (३/१४), **कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि** (३/१५)। ज्ञान सत्-रूप है और कर्म चित् या चेतन-रूप है। इन दोनों के समन्वय से ही आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। ज्ञान में भी मानसिक क्रिया होती है, जिसके द्वारा ज्ञानी महत्तत्त्व – परमेश्वर की प्राप्ति करता है – **ज्ञानेन कुरुते यत्नं यत्नेन प्राप्यते महत्**। ज्ञानवान् ही कर्मों के द्वारा सिद्धि प्राप्त करता है – **ज्ञानवान् एव कर्माणि कुर्वन् सर्वत्र सिध्यति**। और फिर ज्ञानी भी तो वही है, जो क्रियावान हो – **यः क्रियावान सः पण्डितः**। यों तो मूर्ख और प्राज्ञ – दोनों ही कर्म करते हैं, किन्तु मूर्ख का केवल शारीरिक योग होता है, जबकि प्राज्ञ शरीर तथा बुद्धि दोनों के उपयोग से कुशलता के साथ कर्म सम्पन्न करता है – **प्राज्ञस्य मुर्खस्य च कार्ययोगः समत्वम् अभ्येति तनुर्न बुद्धिः**। (भास-अविमारक ५/५)

किसी भी जीवधारी के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह कर्मों को पूर्ण रूप से छोड़ दे – **नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माणि अशेषतः**। (१८/११) जनक आदि ज्ञानियों ने कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की थी। (३/२०) लोकसंग्रह की भावना से ज्ञानी को भी कर्म करना चाहिए; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, इतर जन उसी का अनुसरण करते हैं; जिसे वह प्रमाणित करता है, लोक उसी को स्वीकार करता है। (३/१९-२१) ज्ञानी सर्वदा मुक्त रहता है। कर्म करने पर भी वह कर्तृत्व से दूर रहता है, जैसे श्रीकृष्ण, जनक आदि कर्म करते हुए भी सर्वथा अलिप्त थे –

विवेकी सर्वदा मुक्तः कुर्वतो नास्ति कर्तृता ।
अलेपवादम् आश्रित्य श्रीकृष्ण-जनकौ यथा ।।
(आचार्य वादरायण)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मुझे कर्म लिप्त नहीं करते; क्योंकि मेरी कर्मफल में स्पृहा नहीं है। जो मुझे इस प्रकार जानता है, वह कर्मों से नहीं बँधता –

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ।।

– हे पार्थ ! यद्यपि तीनों लोकों में मेरा कुछ भी कर्तव्य और प्राप्तव्य-अप्राप्तव्य नहीं है, तो भी मैं लोकसंग्रह की भावना से कर्म करता हूँ। (३/२२-२३)

लोक-संग्रह के निमित्त किये जानेवाले कर्म के ये पाँच लक्षण हैं – (१) सम्पूर्ण कर्मों को प्रभु को अर्पित करना (२) चित्त को आत्मा में केन्द्रित करना (३) आशा से रहित (४) देहासक्ति-रूप ममत्व से रहित (५) घबड़ाहट या सन्ताप से परे होना। (३/३०) लोकसंग्रह के लिए होनेवाला इन लक्षणों से युक्त कर्म मुमुक्षुओं के लिए भी त्याज्य नहीं है, क्योंकि पूर्ववर्ती मोक्ष-साधकों और महापुरुषों ने भी कर्म का परित्याग नहीं किया। (४/१५)

कुछ ज्ञानयोगियों का कहना है कि कर्म दोषयुक्त हैं, अत: त्याज्य हैं और कुछ कर्मयोगियों का मत हैं कि यज्ञ, दान, तप आदि कर्म त्याज्य नहीं हैं। भगवान श्रीकृष्ण का स्पष्ट मत है कि यज्ञादि कर्म त्याज्य नहीं हैं, करणीय हैं, क्योंकि वे मनीषियों को भी पवित्र करनेवाले हैं। आसक्ति तथा फलाकांक्षा को छोड़कर इन्हें निश्चित रूप से करना चाहिए। यही कर्मयोग है। गीता में 'ज्याय:', 'अधिक:' और 'विशिष्यते' – इन विशेषणों से इसकी विशिष्टता प्रतिपादित की गयी है।

निष्काम कर्मयोग और भक्तियोग –

निष्काम कर्म और भक्ति दोनों एक ही है। भक्ति का ही अपर पर्याय निष्काम कर्म है। यदि कर्मयोग में यज्ञ के लिए किया कर्म विलीन हो जाता है, तो ज्ञानमार्ग में बिना कर्म के ही वैसा हो जाता है.। बड़ा-से-बड़ा पापी भी ज्ञानरूपी नौका से तर जाता है। भक्तिमार्ग में दुराचारी भी भगवान की शरण में पहुँचकर शीघ्र ही साधु और धर्मात्मा हो जाता है। ज्ञानियों के अनुसार ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती, तो भक्त कभी मोक्ष की अपेक्षा ही नहीं करता; भक्त अपने पृथक् अस्तित्व की रक्षा करके मर्यादा का पालन करना चाहता है। प्रभु की नित्य लीलाओं का अवलोकन करना चाहता है। ज्ञानियों का ब्रह्म-तादात्म्य उसे रुचिकर नहीं है –

(क) जैहै बनि-बिगरि न वारिधिता वारिधि की –
बूँदता विलैहै बूँद विवस विचारी की ।। (रत्नाकर)

(कर्मयोग में) –

(ख) यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ।। (४/२३)

(ज्ञानयोग में) –

(ग) अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।। (४/३६)

(भक्तियोग में) –

(घ) अपि चेत्सुदुराचारो भजते माम् अन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति :।।
(९/३०-३१)

भक्तिमार्ग कर्ममार्ग है। वह प्रवृतिपरक है –

नारायणपरोधर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः ।
प्रवृत्ति-लक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः ।।

भगवान श्रीमद्-भागवत में कहते हैं कि उनकी प्राप्ति ज्ञानयोग अथवा ध्यानयोग से नहीं होती। स्वाध्याय, तप और कर्मत्याग से भी वे सुलभ नहीं हैं –

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममार्जिता ।।

ज्ञानी के समान ही भक्त भी भगवान को ही प्राप्त होता है – **मद्भक्ता यान्ति मामेव** (७.२३), **मामेवैष्यस्यसंशयम्** (९.२७) **मामुपैष्यसि** (९/२८) **विशते तदनन्तरम्** (१८/५५) **मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्** (१८/५६) इत्यादि। स्पष्ट है कि भक्ति और कर्मयोग में अभिन्नता है।

आचार्य शंकर और कर्मयोग –

आचार्य शंकर ने प्रश्न उठाया है कि इस गीताशास्त्र में नि:श्रेयस का साधन ज्ञान है, अथवा कर्म, या दोनों –

अस्मिन् हि गीताशास्त्रे परं निःश्रेयसाधनं निश्चितं
किं ज्ञानं किं कर्म वा आहोस्विद् उभयम् इति ।'

(गीताभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०४१, पृ. ४५९)

इस प्रकार का संशय उठना स्वाभाविक है, क्योंकि गीता में दोनों का उपदेश दिया गया है और दोनों का प्रतिपादन है। मीमांसा के बाद आचार्यपाद ने ज्ञान को ही मोक्ष का परम साधन माना है। उन्होंने कर्म का स्वतंत्र अस्तित्व भी स्वीकार नहीं किया है। उनके अनुसार कर्म केवल चित्तशुद्धि का साधन है। ज्ञानोदय के लिए अन्त:करण की पवित्रता आवश्यक है। अत: कर्मयोग ज्ञानयोग का उपाय है, मात्र साधन है। ज्ञान-कर्म-समुच्चय भी मोक्ष का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि गति और स्थिति की दो क्रियाएँ एक साथ सम्भव नहीं हैं। इस पर भी मोक्ष स्वत:सिद्ध है। वह न तो ज्ञान का कार्य है, न कर्म का और न दोनों के समुच्चय का। स्वत:सिद्ध वस्तु किसी का कार्य नहीं होती। रज्जु दीपक के

प्रकाश का कार्य नहीं है, क्योंकि वह तो पूर्व से ही विद्यमान थी। अन्धकार के कारण जिसे सर्प समझकर भय लग रहा था, उसके वास्तविक रूप का दर्शन करा देने पर प्रकाश का फल समाप्त हो जाता है। ज्ञान का फल भी अज्ञान-रूप अन्धकार को हटाकर आत्म-रूप को प्रत्यक्ष करा देने तक ही सीमित है। समस्त कर्म अविद्या और कामनामूलक हैं – **अविद्या-काम-बीजं हिं सर्वम् एव कर्म। अविद्वद् विषयं कर्म, विद्वद्-विषयाच सर्व-कर्म-संन्यास-पूर्विका ज्ञाननिष्ठा।** (वही, पृ. ४६७) कर्म अज्ञानी के लिए है। ज्ञानी के लिए तो सर्व-कर्म-संन्यास-पूर्वक ज्ञाननिष्ठा है। आरुरुक्षु-साधक के लिए कर्म कारण है, किन्तु योगारूढ सिद्ध के लिए उनकी अनिवार्यता नहीं है। साधनावस्था में ही कर्म आवश्यक है। सिद्धावस्था में, जहाँ ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान – तीनों एक हो जाते हैं, वहाँ कर्म महत्त्वहीन है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि गीताशास्त्र में किंचिन्मात्र भी श्रौत या स्मार्त किसी भी कर्म के साथ आत्मज्ञान का समुच्चय, कोई भी नहीं दिखा सकता – **तस्माद् गीताशास्त्रे ईषन् मात्रेण अपि श्रौतेन स्मार्तेन वा कर्मणा आत्मज्ञानस्य समुच्चयो न केनचिद् दर्शयितुं शक्यः।**

लोकमान्य तिलक और कर्मयोग –

लोकमान्य तिलक आचार्य शंकर के उक्त मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार कर्म का स्वतंत्र अस्तित्व है। यदि इसे यज्ञ और लोकसंग्रह की भावना के साथ भगवदर्पण करते हुए किया जाय, तो यह सर्वथा निर्दोष है। मनुष्य को आजीवन कर्म करना चाहिए –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

जो प्रण्डित श्रद्धा के साथ कर्म करते हैं, वे साधुदर्शी और धीर हैं –

कुर्वते ये तु कर्माणि श्रद्दधाना विपश्चितः।
अनाशीर्योगसंयुक्तास्ते धीराः साधुदर्शिताः।।

उपसंहार –

भगवान शंकराचार्य ने गीताभाष्य के उपोद्घात में लिखा है कि भगवान ने सर्वप्रथम इस ब्रह्माण्ड की रचना की। तदनन्तर इसके पालन के लिए मरीचि आदि प्रजापतियों को रचकर उन्हें वेदोक्त प्रवृत्ति-रूप धर्म – कर्मयोग की दीक्षा दी। फिर सनक-सनन्दन आदि ऋषियों को उत्पन्न करके उन्हें ज्ञान-वैराग्य-रूप धर्म ग्रहण करने का आदेश दिया। इससे स्पष्ट है कि **जीवन का प्रथम मार्ग कर्मयोग है। इसके बाद ही ज्ञानमार्ग में प्रवृत्ति सम्भव है।** वेदों ने अधिकारी-भेद से जिन ज्ञान-कर्म-रूप मार्गों का प्रतिपादन किया है, गीता ने विवेचन कर उन्हीं की सम्पुष्टि की है। ज्ञान का मार्ग कृपाण की धार है, जिस पर चलना सभी के वश की बात नहीं है। कर्मासक्त अज्ञों के लिए तो कर्मयोग से बढ़कर और कोई प्रीतिकर पथ नहीं है।

अभ्युदय और निःश्रेयस – प्रेय और श्रेय जीवन के दो लक्ष्य हैं। भौतिक-सुखों की प्राप्ति बिना कर्म के नहीं हो सकती। परन्तु यदि इसे फलासक्ति का त्याग किये बिना किया गया, तो साधनों की पवित्रता नष्ट हो जायेगी। जब जीवन में साध्य का आकर्षण बढ़ जाता है, तो साधनों की महत्ता गौण हो जाती है। जिसके कारण समाज में घूसखोरी, मिलावट, कालाबाजारी और मुनाफाखोरी जैसे जघन्य अपराधों की वृद्धि होती है। समर्पण एवं सेवाभाव होने पर कर्म की पुनीतता बनी रहती है और सामाजिक अपराधों की ओर भी प्रवृत्ति नहीं होती। साथ ही जब व्यक्ति के सामने पारलौकिक कल्याण का भी आदर्श रहेगा, तब वह भौतिक साधनों को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य न मानकर उनके संग्रह से विरत रहेगा और समाज में अनर्थ-परम्परा की सृष्टि नहीं होगी।

यदि कहा जाय कि यह जानकर भी कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है, उनमें मेरी प्रवृत्ति हृदय में स्थित किसी अज्ञात देव के द्वारा होती है, जिसका मैं यंत्रवत् पालन करता हूँ –

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन।
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

अतः कर्म न तो स्वभाव-वशता है और न मनुष्य प्रकृति का दास ही है, जो विवश होकर शुभाशुभ कर्म में प्रवृत्त होता है। वह वायु से आन्दोलित पत्र, अनिल से प्रेरित पतंग और जल की तरंगों के आघात से प्रवहमान शव नहीं है। वह प्रकृति का स्वामी है। अपनी इच्छा से मार्ग का चयन कर उस पर अग्रसर होनेवाला स्वनियुक्त पथिक है। इसलिए उसकी पर-नियुक्ति युक्ति-संगत नहीं है।

ज्ञान और कर्म निर्गुण और सगुण की उपासना है। सिद्धान्त और व्यवहार है। विज्ञान और कला है। विचार और आचार है। कथनी और करनी है। अद्वैत और द्वैत है। अन्तः और बाह्य है। सूक्ष्म और स्थूल है। अमूर्त और मूर्त है। श्रेय और प्रेय है। दोनों के समन्वय से ही जीवन-पुष्प का सौन्दर्य मुखरित हो सकता है। किसी एक की उपेक्षा से असन्तुलन स्थापित होकर संसार-सरोवर में आभा बिखरने वाली पंकजश्री आहत हो जायेगी। इसलिए गीता में **ज्ञानयोग व्यवस्थितिः** से ज्ञानयोग और कर्मयोग में समन्वित रूप से स्थिति का प्रतिपादन है। यही समन्वय गीता का आदर्श है और इसीलिए यह प्रधान दैवी सम्पत्ति है।

❖ (क्रमशः) ❖

आबू में खेतड़ी-नरेश से परिचय

स्वामी विदेहात्मानन्द

(१८९३ ई. में अमेरिका के शिकागो नगर में आयोजित सर्व-धर्म-महासभा में पहुँचकर अपना ऐतिहासिक व्याख्यान देने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने एक अकिंचन परिव्राजक के रूप में उत्तरी-पश्चिमी भारत का व्यापक भ्रमण किया था। इस लेखमाला में प्रस्तुत है – विविध स्रोतों से संकलित तथा कुछ नवीन तथ्यों से संबलित उनके राजस्थान-भ्रमण तथा वहाँ के लोगों से मेल-जोल का रोचक विवरण। – सं.)

मुंशी जगमोहनलाल से भेंट

इन्हीं दिनों जून के प्रथम सप्ताह में एक ऐसी घटना हुई, जो स्वामीजी के जीवन में काफी महत्त्व रखती है, वह घटना थी – खेतड़ी-नरेश राजा अजीतसिंह से उनकी मुलाकात।

किशनगढ़ के वकील फैज अली और उनके मित्रों के साथ आबू में स्वामीजी के अनुरागियों की एक अच्छी-खासी टोली बन गयी थी। कुछ ही दिनों बाद एक दिन (सम्भवत: ४ जून, १८९१ ई. को) खेतड़ी-नरेश के निजी-सचिव मुंशी जगमोहन लाल वकील साहब द्वारा निमंत्रित होकर किशनगढ़ कोठी में आये। स्वामीजी उस समय केवल एक गेरुआ कौपीन पहने तथा एक वस्त्र ओढ़े खाट पर लेटे हुए थे। सोये हुए साधु को देखकर मुंशीजी ने सोचा – "ये तो वैसे ही कोई सामान्य साधु दिखते हैं, अनेक चोर-उचक्के साधु के भेष में घूमा करते हैं, ये भी उन्हीं में से एक होंगे।"

शीघ्र ही स्वामीजी की नींद टूट गयी। जगमोहन लाल ने बातचीत के आरम्भ में भी उनसे पूछ लिया – "अच्छा स्वामीजी, आप तो हिन्दू संन्यासी हैं, तो भी आप एक मुसलमान के घर में कैसे ठहरे हुए हैं? आपका भोजन भी तो यदा-कदा इनसे छू जाता होगा!"

प्रश्न सुनकर स्वामीजी ने थोड़ी नाराजगी जताते हुए कहा – "आप कहते क्या हैं? मैं संन्यासी हूँ। मैं आप लोगों के सारे सामाजिक विधि-निषेधों से परे हूँ। मैं एक भंगी के साथ भी भोजन कर सकता हूँ। इससे भगवान के अप्रसन्न होने का भय मुझे नहीं है, क्योंकि यह भगवान का निर्देश है। मुझे शास्त्र का भी भय नहीं है, क्योंकि शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हैं। परन्तु मुझे आप लोगों का और आपके समाज का भय अवश्य है। आप लोग तो भगवान और शास्त्र की भी परवाह नहीं करते। मैं तो विश्व-प्रपंच में सर्वत्र ब्रह्म को ही प्रकाशित देखता हूँ। मेरी दृष्टि में ऊँच-नीच या स्पृश्य-अस्पृश्य कुछ भी नहीं है। शिव! शिव!!"

स्वामीजी की वाणी से मानो बिजली फूट रही थी और उनका मुखमण्डल एक स्वर्गीय आभा से उद्भासित हो रहा था। मुंशी जगमोहन लाल ने निरुत्तर होकर स्वामीजी की दो-चार बातें सुनी और मुग्ध होकर मन-ही-मन सोचने लगे – हमारे खेतड़ी के महाराजाधिराज के साथ इन साधु का परिचय होना आवश्यक है।

उन्होंने कहा – "दया करके क्या आप हमारे महाराजा से मिलने राजभवन में चलेंगे?"

स्वामीजी ने कहा – "ठीक है। परसों चलूँगा।"

लौटकर जगमोहन लाल ने सारी बातें अपने राजा अजीतसिंह को बतायीं। इस पर वे स्वामीजी से तत्काल मिलने को व्यग्र हो गए और बोले, "मैं ही उनका दर्शन करने चलता हूँ।"

महाराजा अजीतसिंह से वार्तालाप

मुंशीजी ने लौटकर यह बात स्वामीजी को बतायी और वे स्वयं ही अविलम्ब राजा अजीतसिंह से मिलने उनके बँगले पर जा पहुँचे। महाराजा ने उनका सप्रेम स्वागत किया। स्वामीजी की जीवनियों से ज्ञात होता है कि उस दिन राजा ने स्वामीजी से दो प्रश्न पूछे थे, और उनका युक्तियुक्त उत्तर पाकर सदा के लिये उनके अनुरागी हो गये थे। उस दिन का प्रश्नोत्तर इस प्रकार है –

महाराजा – "स्वामीजी, जीवन क्या है?"

स्वामीजी – "एक अन्तर्निहित शक्ति (जीवात्मा) अविराम मानो अपने स्वरूप में व्यक्त होने की चेष्टा कर रही है और बाह्य प्रकृति उसे दबा रही है – प्रतिकूल अवस्थाओं के बीच जीव के आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति को ही जीवन कहते हैं।"

महाराजा – "अच्छा स्वामीजी, शिक्षा किसे कहते हैं?"

स्वामीजी – "विचारों का स्नायुवों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कराने का नाम शिक्षा है। भावों के दृढ़ संस्कार के रूप में प्रत्येक शिरा और स्नायु में व्याप्त हो जाने को शिक्षा कहते हैं। जब तक हमें अग्नि की दाहिका-शक्ति का बोध नहीं होता, जब तक वह अनुभव हमारी धमनी तथा मज्जा तक नहीं पहुँचता, तब तक हमें अग्नि का ज्ञान नहीं होता। थोड़ा-सा तर्कशास्त्र कण्ठस्थ कर लेने मात्र से ही शिक्षा नहीं हो जाती। जो जीवन के साथ मिश्रित हो जाय, वही यथार्थ

शिक्षा है, जैसा कि परमहंस देव का काम-कांचन त्याग था – निद्रावस्था में भी उनके किसी अंग से रुपये का स्पर्श कराने पर उसमें विकृति आ जाती थी। इसी प्रकार जो संस्कार से मिल जाता है, वही वास्तविक शिक्षा है।''

राजा अजीतसिंह उनकी हर बात को मंत्रमुग्ध के समान सुनने लगे – उनका चित्त उन दिनों मानो एक ऐसे दिव्य लोक में विचरण करने लगा, जहाँ केवल सत्य, शिव और सुन्दर ही चिर विराजित हों।

खेतड़ी राज्य के वाकयात रजिस्टर[५] में स्वामीजी के महाराजा के भेंट की बहुत-सी छोटी-छोटी जानकारियाँ मिलती हैं। इनकी खोज का श्रेय विख्यात इतिहासकार पं. झाबरमल्ल शर्मा को जाता है। उक्त रजिस्टर में ४ जुलाई से २७ अक्तूबर १८९१ तक की प्रविष्टियों में से प्रासंगिक संक्षिप्त टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं –

वाकयात रजिस्टर

(पृ.१२४-२८६ तक)

(मारवाड़ी बोली से अनुवादित)

४ जून १८९१, बृहस्पतिवार, मुकाम – आबू

६.३० बजे उठे, ११ बजे भोजन किया, २.३० बजे पोशाक धारण करके घोड़े पर सवार होकर बड़े साहब कर्नल ट्रेवर साहब से मिलने के लिए पधारे। रेजीडेंसी की कोठी पर मुलाकात हुई। बाद में डॉक्टर स्पेंसर साहब से उनकी कोठी पर मुलाकात हुई। थोड़ी देर बात करने के बाद नकी तालाब वाली कोठी पर महाराज प्रतापसिंह जी के पास पधारे और वहाँ १५ मिनट ठहरने के बाद ४.३० बजे (अपराह्न में) डेरे पर वापस लौटे। ... ७ बजे ... । महाराज प्रतापसिंह जी और श्री हुजूर (राजा अजीतसिंह) घोड़ों पर सवार होकर साथ साथ डेरे पर पधारे। महाराज प्रतापसिंह जी आधे घण्टे ठहरकर चले गये और आप किताबें पढ़ने बैठ गये।

थोड़ी देर में एक **संन्यासी विवेकानन्द** जी आये। वे बंगाल देश के अंग्रेजी विद्या में अच्छी निपुणता के व्यक्ति थे, संस्कृत की विद्या से युक्त और साधुताधारी, अत: (महाराजा की) उनके साथ कई तरह की बातें होती रहीं। जोधपुर के हरदयाल सिंह मौजूद थे। ८ बजे भोजन किया। १०.३० बजे हरदयाल जी ने विदा ली। ११ बजे तक बातचीत के बाद साधुजी को भोजन कराया गया। इसके बाद उन्होंने विदा ली और आपने आराम फरमाया।

६ जून, १८९१, शनिवार, मुकाम – आबू

५ बजे उठकर हाथ-मुँह धोया। ७ बजे पैदल हवाखोरी तथा कोठियों का मुलाहिजा करने पधारे। फिर ९ बजे डेरे पर लौट आये। पत्र लिखा।

१० बजे साधु विवेकानन्द जी आ गये। १०.३० बजे भोजन हुआ। इसके बाद साधु जी से अंग्रेजी तथा संस्कृत की बातें होती रहीं। १ बजे आराम फरमाया।

११ जून, १८९१, गुरुवार, मुकाम – आबू

६.३० बजे (महाराजा ने) हाथ-मुँह धोया। बीच के कमरे में विराजे। ८.१५ बजे ऐरनपुरा की फौज का अफसर कर्नल पर्सी स्मिथ तथा बीकानेर की फौज के केटिल साहब आये और बीच के कमरे में कुर्सियों पर बैठे। १५ मिनट तक बातें करने के बाद उनके चले जाने के बाद श्री हुजूर भीतर के कमरे में आकर विराजे। संन्यासी विवेकानन्द आये। उनके साथ विद्या-सम्बन्धी बातचीत हुई। १०.३० बजे भोजन हुआ। संन्यासी को भी वहीं भोजन कराया गया। इसके बाद संन्यासी जी ने कुछ भजन गाये और फिर विद्या-सम्बन्धी बातें शुरू हुईं। २ बजे संन्यासी चले गये। इसके बाद जगमोहन लाल ने उपस्थित होकर रियासत के कामकाज के कागजात प्रस्तुत किये।

१५ जून, १८९१, सोमवार

... १० बजे लॉक साहब मिलकर गये। (इसके बाद) स्वामी विवेकानन्द जी आ गये। उनके साथ बातचीत होती रही। १२ बजे भोजन हुआ। संन्यासी को भी वहीं भोजन कराया गया। इसके बाद उनके साथ जो बातें शुरू हुईं तो ३ बजे तक चलती रहीं।

२२ जून, १८९१, सोमवार

... ९ बजे स्वामी विवेकानन्द जी संन्यासी आकर बाहर के कमरे में बैठे थे। (महाराजा) वहीं पधारकर विराजे। स्वामीजी से ज्ञान की चर्चा होती रही। ११.४५ बजे भोजन आ गया। स्वामीजी को भी अपने पास ही भोजन कराया। इसके बाद तो हुजूर साहब भीतर के कमरे में लेटकर अखबार देखते रहे और स्वामीजी बीच के कमरे में विराजे। २.३० बजे (महाराजा) बीच के कमरे में आ विराजे और ५ बजे तक स्वामीजी से ज्ञान-सम्बन्धी बातचीत होती रही। ५ बजे स्वामीजी विदा हुए।

२३ जून, १८९१, मंगलवार

स्वामी विवेकानन्द जी आ गये और कोठी में उनके साथ बातचीत हुई। १२ बजे भोजन आ गया। स्वामीजी को भी अपने पास ही भोजन कराया। इसके बाद (महाराजा) पलंग पर लेटकर अखबार देखने लगे और उसके बाद आराम फरमाया।

५. देखिये – राजस्थान में स्वामी विवेकानन्द, पं. झाबरमल्ल शर्मा और पं. श्यामसुन्दर शर्मा, प्रथम सं. १९८९, भीलवाड़ा संस्कृति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम खण्ड, पृ. ३८-४९

२४ जून, १८९१, बुधवार

७ बजे उठे। चुरुट पीया। हाथ-मुँह धोकर बीच के कमरे में विराजे। पीकॉक साहब ने (मारे गये) शेर (बाघ) को बँगले में मँगवाने का हुक्म दिया। शतरंज का खेल हुआ। कुँवर शिवनाथ सिंह जी आये। बैठ गये। शेर साढ़े आठ बजे आया। पीकॉक साहब ने खाल उतारनेवाले नाथ्या चमार को उसके साथ ही भेजा था, सो सामने बैठकर उसकी खाल निकलवाई गई। ९.१५ बजे कुँवर विदा लेकर चले गये। ९.३० बजे पीकॉक साहब आये। खाल उतरती देख थोड़ी देर ठहरकर लौट गये। शेर की चर्बी आदि बँटवा दी गई। खाल को सूखने के लिए डाल दिया गया।

स्वामी विवेकानन्द जी आ गये, सो कोठी में उनके साथ बातचीत होती रहीं। १२ बजे खाना आ गया। स्वामीजी को भी अपने पास ही भोजन कराया। पलंग पर लेटकर अखबार पढ़ते रहे। ३ बजे आराम फरमाया।

४.४५ बजे उठकर बाहर के कमरे में पधारे। स्वामी विवेकानन्द जी से बातचीत शुरू हुई। ५ बजे, पहले से निश्चित समय पर छालेसर (अलीगढ़ के पास स्थित) के **ठाकुर मुकुन्दसिंह जी, अजमेर के आर्यसमाज के अध्यक्ष हरबिलास जी, बी.ए.** को साथ लिए आये। हुजूर साहब कुर्सी के पास खड़े थे। उनके आने पर स्वागत करके पहले ठाकुर मुकुन्दसिंह जी और बाद में हरबिलास जी ने नजराना पेश किया। हाथ लगाकर उन्हें वापस कर दिया गया। स्वयं विराज गये और उन्हें भी कुर्सियों पर बैठा लिया। स्वामीजी भी एक कुर्सी पर बैठ गये। आधे घण्टे तक बातें हुईं। ठाकुर मुकुन्दसिंह जी ने हारमोनियम बजाया। इसके बाद वे लोग विदा हुए और श्री हुजूर साहब घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी के लिए निकल गये।

२७ जून, १८९१, शनिवार

स्वामीजी आ गये, सो बीच के कमरे में विराजकर उनके साथ बातें करते रहे। ११.३० बजे खाना आ गया। स्वामीजी को भी पास में ही भोजन कराया। १२ बजे पालट साहब से मिलने गये। वहाँ १५ मिनट ठहरने के बाद डेरे में लौट आये। थोड़ी देर स्वामीजी से बातें की, फिर हारमोनियम बजाया, स्वामीजी गाते रहे। फिर ४ बजे तक स्वामीजी से बातें होती रहीं।

४ जुलाई, १८९१, शनिवार

... एक बजे तक शतरंज का खेल चलता रहा। इतने में स्वामी विवेकानन्द जी संन्यासी आ गये। और बीच के कमरे में विराजकर उनके साथ विद्या-सम्बन्धी बातें होती रहीं।

६ जुलाई, १८९१, सोमवार

महाराज प्रतापसिंह जी तथा ठाकुर फतेहसिंह जी घण्टे भर ठहरकर बड़े साहब के पास चले गये। उसके बाद स्वामी विवेकानन्द जी संन्यासी आ गये, बगल के कमरे में बैठकर उनके साथ बातें कीं।

८ जुलाई, १८९१, बुधवार

... स्वामी विवेकानन्द जी से बातें हुईं।

९ जुलाई, १८९१, गुरुवार

... जगमोहन लाल ने जयपुर तथा खेतड़ी के कागज पेश किये। उसके बाद स्वामीजी तथा जगमोहन लाल जी से और थोड़ी देर बाद पेस्तन जी से बातें हुईं। ... ठाकुर मुकुन्दसिंह ने थोड़ी देर तक हारमोनियम बजाया। ५.४५ उन्होंने विदा ली। आप (महाराजा) हाथ-मुँह धोकर ६.३० बजे क्लब में पधारे। आज कुँवर शिवनाथसिंह जी की ओर से फतेहसिंह जी की नकी तालाबवाली कोठी पर दावत थी, अत: क्लब में पधारते समय कह गये कि सब लोग कपड़े आदि पहनकर क्लब में ही आ जायँ। वहाँ सब लोग एक साथ नकी तालाब वाली कोठी पर जायेंगे। ...

श्री हुजूर सवा सात बजे क्लब में से अपने सीकर के श्यामजी और अपने डेरे के अन्य लोगों को साथ लेकर लेक हाउस पधारे। वहाँ ठाकुर फतेहसिंह जी ने स्वागत किया। (महाराज) वहाँ बैठ गये। अन्य आमंत्रित लोग भी ... वहाँ पहुँच गये। ... थोड़ी देर शतरंज का खेल हुआ। डाक के पत्र देखे। स्वामी विवेकानन्द जी से बातें होती रहीं। ११.३० बजे भोजन आ गया। एक ओर स्वामी विवेकानन्द जी बैठे। १२ बजे भोजन समाप्त हुआ।

११ जुलाई, १८९१, शनिवार

७ बजे उठे। चुरूट पीया। हाथ-मुँह धोया। सनदी कागज देखे। पत्र लिखे। ११ बजे भोजन आया। बाद में स्वामी विवेकानन्द जी से बातें हुईं।

१४ जुलाई, १८९१, मंगलवार

बीच के कमरे में विराजे। शतरंज का खेल हुआ। ११ बजे भोजन आया। स्वामी विवेकानन्द जी आये। उनके साथ ज्ञान तथा पुस्तकों के विषय में बातें होती रहीं।

१७ जुलाई, १८९१, शुक्रवार

१२ बजे खाना आया। उसके बाद बीच के कमरे में विराजकर स्वामी विवेकानन्द जी से बातचीत हुई।

१८ जुलाई, १८९१, शनिवार, आबू

८ बजे उठे। हाथ-मुँह धोकर ९.३० बजे घोड़े पर सवार होकर खरीदी गई कोठी को देखने गये। वहाँ विराजकर बातें

करते रहे। १०.३० बजे ठाकुर फतेहसिंह जी आये। उनके साथ बातचीत हुई। घण्टे भर ठहरकर कोठी को चारों ओर से देखने के बाद ठाकुर ने विदा ली। १२ बजे भोजन हुआ। १ बजे बड़े साहब के पास पधारे। आधे घण्टे ठहरकर बातचीत करने के बाद डेरा होते हुए कोठी में पधारे, बातचीत करके, कोठी के बरामदे में विराजकर शतरंज का खेल हुआ। **नांगल कोठी** की बावत २१ ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। ब्राह्मण-भोज के पूर्व कोठी में अग्निहोत्र कराया गया। भोजन करनेवाले ब्राह्मणों को एक एक रुपये दक्षिणा दी गई। ४ बजे हाथ-मुँह धोकर ५ बजे क्लब में पधारे। वहाँ खेल हुआ और एरस्किन साहब से बातें हुईं। इसके बाद वे पीकॉक साहब के साथ उनकी कोठी पर गये। वहाँ पर उनके साथ बातें होती रहीं। ८.३० बजे खास कोठी में पधार गये। आज नांगल कोठी की बावत हर तरह से भोज का प्रबन्ध किया गया था। भोजन के लिए मेजें लगायी गयी थीं। उनके चारों ओर कुर्सियाँ सजायी गयी थीं।

स्वामी विवेकानन्द जी आये। उनसे बातें हुईं। चौबेजी का सितार सुना। ठाकुर फतेहसिंह जी राठोड़ तथा ठाकुर मुकुन्दसिंह जी चौहान (छालेसर) और मानसिंह जी (जामनगर) को निमंत्रित किया गया था, इसलिए वे लोग आये थे। ठा. फतेहसिंह जी के साथ पाँच आदमी, मुकुन्दसिंह जी के साथ एक, और मानसिंह जी के साथ भी एक आदमी आया था।

सरदार लोग पहले तो बैठे बैठे मद्यपान करते हुए बातें करते रहे। फिर १.२ बजे कुर्सियों पर बैठकर भोजन हुआ। भोजन की मेज पर लोग इस क्रम से बैठे – श्री हुजूर, ठा. फतेहसिंह जी, ठा. मुकुन्दसिंह जी, जामनगर के मानसिंह जी, सींगासन के श्यामजी लाडखानी, ठा. फतेहसिंह जी के हमराही मोतीसिंह जी नाथावत, ठा. मुकुन्दसिंह जी के हमराही केसर जी, चिराणा के बींज जी – अपने बगल की एक अलग मेज पर स्वामीजी का और दूसरी ओर एक अन्य मेज पर बाबू नेकीराम जी के लिए थालियाँ लगायी गयीं। भोजन चलता रहा। भोजन के बाद थोड़ी देर बैठे। उसके बाद ठाकुर फतेहसिंह जी, ठाकुर मुकुन्दसिंह जी तथा मानसिंह जी विदा लेकर चले गये। श्री हुजूर साहब हारमोनियम बजाकर मन-बहलाव करते रहे। १.३० बजे आराम फरमाया। आज से डेरा इसी कोठी में आ गया।

एक दिन राजा ने कहा, "स्वामीजी, आप मेरे साथ मेरे राज्य (खेतड़ी) में चलिए।" स्वामीजी ने थोड़ा सोचकर कहा "ठीक है, आपके साथ चलूँगा।"

बाघ का शिकार

उस काल के अनेक राजाओं के समान ही राजा अजीतसिंह बाघों के शिकार में काफी रुचि लेते थे। मुंशी जगमोहन लाल एक पत्र में लिखते हैं – "(राजा अजीतसिंह) बन्दूक का निशाना लगाने में अद्वितीय थे। ... उन्होंने इतने भारी शेरों का और इतने अधिक खुले पर्वतों में शिकार किया कि जिनकी संख्या का बोध केवल (दरबार के) रजिस्टरों के देखने से ही हो सकता है।" (आदर्श नरेश, पृ. ३५८)

मद्रास से प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी मासिक 'ब्रह्मवादिन्' (जुलाई १९११, पृ. ३०३) में प्रकाशित एक लेख में स्वामीजी के स्वयं भी बाघ के एक शिकार में उपस्थित होने की घटना का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वही घटना है जिसका उल्लेख वाकयात रजिस्टर में २४ जून की प्रविष्टि में मिलता है। इससे संकेत मिलता है कि पिछली शाम को महाराजा अजीतसिंह एक पार्टी के साथ बाघ के शिकार पर गये थे। वह रोचक विवरण इस प्रकार है –

"एक बार उनके एक शिष्य एक राजपूत राजा उन्हें शिकार पर ले गये। स्वामीजी हाथ में अपना दण्ड लिए चुपचाप एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और बाकी लोग अपनी बन्दूकें लेकर व्यस्त हो गये। एक बाघ स्वामीजी के पास से होकर दौड़ा। राजा किंकर्तव्य-विमूढ़ तथा भयभीत होकर एक बन्दूक लिए उस वृक्ष की ओर दौड़े और स्वामीजी से भी एक बन्दूक लेने का अनुरोध किया। उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा, 'साधुओं को आत्मरक्षा के लिये बन्दूक की आवश्यकता नहीं होती। बाघ भी उन्हें हानि नहीं पहुँचाता। "ईश्वर का कोई भी प्राणी मुझसे किसी प्रकार से भय न करे" – इस प्रकार मैं सभी को अभय प्रदान करने का संकल्प लेता हूँ। – क्या यह संन्यास का महान् व्रत नहीं है। वस्तुतः जो (अपने) अन्दर के वासना रूपी पशु का नियंत्रण कर सकता है, वह बाहर के पशुओं को भी नियंत्रित कर सकता है।' "

अस्तु। इस बाघ की खाल खेतड़ी भी ले जायी गयी थी। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इसका वाकयात रजिस्टर में ९ अगस्त १८९१ को पुनः उल्लेख हुआ है।

माउंट आबू से वापस खेतड़ी को

टिप्पणी – २४ जुलाई, १८९१ को श्रीमान् राजा साहब आबू से ११.१५ बजे, हाथ-गाड़ी में रवाना होकर, खारची स्टेशन से ट्रेन में सवार हुए। ट्रेन अजमेर होती हुई २५ जुलाई को सबेरे ५ बजे जयपुर पहुँची। ठाकुर हरिसिंह जी, मुंशी जगमोहन लाल जी, लाला जमनालाल जी वकील, लाला शिवबक्स जी, पनेसिंह जी वकील, सीकर के पण्डित लक्ष्मीनारायण जी और गोपाल सहाय जी ने हाजिर होकर भेंट की। साढ़े पाँच बजे डेरे पर पधारे। ❖ (क्रमशः) ❖

(अगले अंक में स्वामीजी का जयपुर होते हुए खेतड़ी पहुँचना और उस रियासत का परिचय)
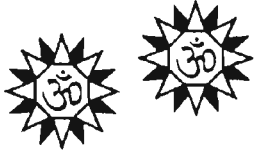
मेरी स्मृतियों में विवेकानन्द (७)
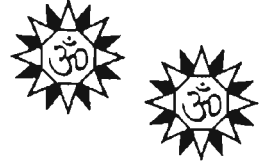
भगिनी क्रिस्टिन

(जो लोग महापुरुषों के काल में जन्म लेते हैं और उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आते हैं, वे धन्य और कृतकृत्य हो जाते हैं। भगिनी क्रिस्टिन भी एक ऐसी ही अमेरिकन महिला थीं। स्वामीजी-विषयक उनकी अविस्मरणीय स्मृतियाँ आंग्ल मासिक 'प्रबुद्ध-भारत' के १९३१ के जनवरी से दिसम्बर तक, फिर १९४५ के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक तथा १९७८ के मार्च अंकों में प्रकाशित हुई थीं। बाद में वे 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ में संकलित हुई, वहीं से इनका हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी विदेहात्मानन्द ने। – सं.)

वर्षों तक, जब स्वामीजी एक परिव्राजक संन्यासी के रूप में भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण कर रहे थे, वे निरन्तर सोचा करते थे कि भारत की समस्याओं को कैसे हल किया जाय। निर्धनता, आम जनता की दशा, उन्नत वर्ग का उनके प्रति कर्तव्य; मलेरिया, प्लेग, हैजा तथा अन्य महामारियाँ; बाल-विवाह, नारियों तथा विधवाओं की अवस्था, निरक्षरता, भोजन, जाति, स्वच्छता आदि समस्याओं का समूह एक-एककर उनके मनश्चक्षुओं से होकर गुजरता रहता।

उन्हें तीर्थयात्रा के महत्त्व का बोध होने लगा। "भारत की सहायता करने के लिये उससे प्रेम करना होगा; उससे प्रेम करने के लिये उसे जानना होगा।" आज देखती हूँ कि उन्हीं के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए उत्साही युवा छात्रों की टोलियाँ, बहुधा सैकड़ों मील पैदल चलते हुए पूरे भारत की तीर्थयात्रा करती हैं। यह न केवल आध्यात्मिकता को बढ़ावा देता है, अपितु भारत की एकता को भी सुदृढ़ करता है। तीर्थयात्री अपनी मातृभूमि को समझते और उससे प्रेम करते हैं। वे समान श्रद्धा, समान आशा तथा समान उद्देश्य लेकर आते हैं। इस विराट् देश की एक ही पवित्र भाषा है, जिससे उत्तर की सारी भाषाएँ निकली हैं; एक ही पौराणिक आख्यान हैं, समान धार्मिक विचार हैं, एक ही चरम लक्ष्य है। जो महत्त्व ईसाई धर्मयोद्धाओं के लिये ईसा की समाधि का है, कैथॅलिक ईसाइयों के लिये रोम का है, मुसलमानों के लिये मक्का का है, वही और बल्कि उससे भी अधिक महत्त्व हिन्दू के लिये तीर्थयात्रा का है। यदि कोई तीर्थस्थानों के मार्ग का मानचित्र बनाये, तो पता चलेगा कि वे हिमालय से रामेश्वरम् तक और पुरी से द्वारका तक, पूरे भारत को आवृत्त कर लेती हैं। ये तीर्थयात्री क्या ढूँढ़ते हैं? उनका कठोर मार्ग उन्हें किधर ले जा रहा है? उनकी दृष्टि निबद्ध है मानवता के चरम लक्ष्य की ओर; हम (पाश्चात्य लोग) जिस अमृत-पात्र को खो चुके हैं; वे उसी की तलाश में चले जा रहे हैं।

क्या इसमें कोई आश्चर्य की बात है कि उनके समान लोग भारत से प्रेम करते हैं, उसकी समस्याओं तथा आवश्यकताओं को अन्य किसी की तुलना में बेहतर ढंग से समझते हैं और अपना जीवन उसकी सेवा में समर्पित कर देते हैं? ये लोग कोरे सुधारकों की सी भूलें नहीं करते। क्योंकि पहले जो कुछ किया जा चुका है, उसके प्रति सम्मान तथा वर्तमान आवश्यकता की समझ के आधार पर और श्रद्धा तथा प्रेम से प्रेरित होकर ये लोग कार्य करते हैं। उन्हें बोध होता है कि विकास स्वाभाविक रूप से होता है। वे कुछ भी ध्वंस नहीं करते, उनका कार्य रचनात्मक होता है।

स्वामीजी स्वयं कोई समाज-सुधारक नहीं थे। वे विनाश में नहीं विकास में विश्वास रखते थे। उन्होंने भारतीय सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन किया और पाया कि पूर्वकाल में वे किसी सुनिश्चित आवश्यकता को पूरा करती थी। परन्तु काल के अन्तराल में वे आवश्यकताएँ नहीं रहीं, पर संस्थाएँ रह गयीं और उनसे एक-एक कर दोष जुड़ते गये। उन्होंने निर्धनता की समस्या बड़ी व्यापक तथा गम्भीर पाया। उन्होंने अकाल और महामारियों को देखा। प्राचीन भारत की महिमा स्मृति मात्र रह गयी थीं। एक महान् विरासत के साथ यह जाति मानो मृत्यु की राह पर थी। इन दृश्यों के द्वारा जिन आवेगों का उदय हुआ, बाद में उन्हीं से एक सेवा-दर्शन का विकास हुआ, जो अब भी जारी है। जब कभी हैजा या किसी अन्य रोग की महामारी फैलती है, जहाँ हैजा पूरी जनसंख्या को मिटा रही होती है, वहाँ निश्चित रूप से स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक वंशज अपने स्वयं के स्वास्थ्य या जीवन की परवाह न करते हुए पीड़ितों की सेवा में लगे हुए दीख पड़ेंगे। अकाल के समय ये लोग भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र बाँटते हैं। बाढ़ के समय वे राहत-कार्य का संचालन करते दीख पड़ते हैं। इन कार्यों के लिये देश के सभी अंचलों से धन आता है, क्योंकि यह बात सर्वविदित हो गयी है कि इन्हें दिये गये प्रत्येक पैसे का हिसाब रखा जायेगा और इस धन का सर्वोत्तम रूप से उपयोग होगा।

मुम्बई प्रेसिडेंसी में निवास के दौरान स्वामीजी ने संस्कृत

भाषा का अपना ज्ञान पक्का किया। इसके सिवा उन्होंने अपना संस्कृत उच्चारण सुधारने की ओर भी विशेष ध्यान दिया था। दक्षिण की उच्चारण पद्धति उन्हें दोषरहित प्रतीत होती थी। वहाँ से वे, कहीं एक रात, तो कहीं कुछ सप्ताह ठहरते हुए, एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करते रहे और अन्ततः मद्रास (चेन्नै) पहुँचे। वहाँ उनकी उन निष्ठावान युवकों की टोली से भेंट हुई, जिसने उन्हें एक सच्चे महात्मा के रूप में पहचाना। इन सनातनी ब्राह्मण युवकों ने उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार किया, क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि ये ईश्वर-प्रेरित व्यक्ति हैं और जाति या किसी भी अन्य मानवीय संकीर्णता की सीमा के परे हैं। वे स्वयं निर्धन थे, अतः उन लोगों ने स्वामीजी की अमेरिका-यात्रा में सहायता प्रदान करने के लिये चन्दे के रूप में धन एकत्र किया।

विश्व को दिये जानेवाले अपने सन्देश और अपने आसन्न कर्तव्य का निर्धारण हो जाने के बाद अब उनका मन अमेरिका की ओर उन्मुख हुआ। उन्हें आशा थी कि वहाँ उन्हें समाधान मिल जायेगा। उन्हें आशा थी कि वहाँ – विश्व के धनाढ्यतम देश में उन्हें अपनी अभावग्रस्त जनता के लिये सहायता मिल सकेगी। उनका कहना था – "भूखे लोगों से भजन की आशा नहीं की जा सकती।" यद्यपि वे वहाँ सहायता माँगने गये थे, पर उन्होंने पाया कि उनका राजकीय मन केवल दाता ही हो सकता था। उन्होंने क्या दिया? वे एक फकीर थे, उनके पास देने को भला था ही क्या? उनके पास जो सबसे मूल्यवान चीज थी और जो अमूल्य उपहार आज भी भारत दुनिया को दे सकता है – आत्मा का ज्ञान, वही उन्होंने राजा के समान वितरित किया।

एकाकी और बिना किसी पूर्वसूचना के वे उस महाद्वीप में गये। धर्म-महासभा में अपने अनुभव का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था – "मैंने पहले कभी व्याख्यान नहीं दिया था। केवल अनौपचारिक रूप से अपने आसपास बैठे लोगों की छोटी टोलियों को उनके प्रश्नों के उत्तर के रूप में कुछ बोल चुका था। फिर अन्य लोगों की भाँति मैं अपना व्याख्यान लिखकर भी नहीं लाया था। मैं अपने गुरुदेव तथा वाग्देवी सरस्वती का स्मरण करते हुए खड़ा हो गया। मैंने आरम्भ किया – "अमेरिकावासी बहनो और भाइयो" – परन्तु मैं इसके आगे नहीं बढ़ सका। तालियों की गड़गड़ाहट के कारण मुझे रुक जाना पड़ा था।" लगता है कि श्रोताओं ने सारी सीमाएँ तोड़ दी थीं। उन्होंने बताया कि इस अद्भुत स्वागत से उनके हृदय में कैसी भावना उमड़ी – कैसा विस्मययुक्त रोमांच उत्पन्न हुआ! उन्होंने पहले से भी अधिक प्रबलता के साथ अपने पीछे स्थित शक्ति का अनुभव किया। उस दिन से अपने ईश्वर-आदिष्ट होने के विषय में उनके मन में कभी कोई शंका नहीं उठी।

वे वेदान्त के एक अग्रदूत – प्रथम प्रचारक थे। उनकी आध्यात्मिकता सबमें विस्मय उत्पन्न करती थी। लोग पूछने लगे – "जिस देश में ऐसे लोग पैदा होते हैं, वहाँ मिशनरियों को भेजने की क्या जरूरत है?"

उनके कुछ उद्‌गार

कुछ महान् विचार याद रह गये, इसलिये नहीं कि वे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे, बल्कि इसलिये कि वे नवीन तथा अद्भुत हैं। और उस समय ऐसा ही हुआ, जब स्वामीजी ने याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी की कथा सुनाने के बाद जब अन्त में कहा – "वस्तुतः पति के लिये नहीं, अपितु पति में निहित आत्मा के लिये ही उससे प्रेम किया जाता है।"

प्रेम – यह विचार हमारे लिये बिल्कुल नया था कि सारा प्रेम एक ही है और हम पुत्र, पिता, माता, पति, पत्नी, मित्र में आत्मा को देखते हैं और इसीलिये उनसे प्रेम करते हैं। प्रेम के माध्यम से वह आनन्द-स्वरूप ही अभिव्यक्त हो रहा है। एक माँ अपनी सन्तान में उसी देवत्व को देखती है, वैसे ही पत्नी अपने पति में और बाकी सम्बन्धों में भी लोग देखते हैं। हमने इसे श्रेणीबद्ध कर दिया है और कहते हैं – माँ का प्रेम, बच्चे का प्रेम, मित्र का प्रेम, प्रेमी का प्रेम – मानो वे एक ही प्रेम की विविध अभिव्यक्तियाँ न होकर प्रेम के भिन्न-भिन्न प्रकार हों।

आनन्द – "आनन्द में हमारा जन्म हुआ था, आनन्द में हम निवास करते हैं और आनन्द में हम लौट जायेंगे।"[१] हमारा जन्म पाप से नहीं 'आनन्द' से हुआ है। आनन्द हमें कहीं से प्राप्त या अर्जित नहीं करना है, बल्कि वह हमारा स्वभाव है। **तत् त्वम् असि** – तुम वही हो। दुःखों के बीच में, आपदाओं के बीच में भी यही सत्य है; उस अवस्था में भी मुझे कहना होगा – "मैं आनन्दमय हूँ, मैं चैतन्यमय हूँ। मेरा यह स्वरूप किसी पर निर्भर नहीं करता। और इस पर भी कुछ निर्भर नहीं करता।" यह संयुक्त रूप से एक भयंकर और एक सुन्दर सत्य है।

उन्नति – अब तक हम लोगों का विश्वास था कि चरम मुक्ति उन्नति का एक रूप है, जिसके अनुसार हम क्रमशः किसी उच्चतर या बेहतर वस्तु की ओर प्रगति करते हुए अन्ततः अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं। पर प्राचीन ज्ञान के इन महान् आचार्य से हमने जाना कि यह प्रक्रिया उन्नति या विकास नहीं, वरन् आवरण हटाने या अनुभूति की है। पूर्णता या दिव्यता मनुष्य का अब भी सच्चा स्वरूप है। उसे कुछ भी प्राप्त नहीं करना है। सत्य की केवल अनुभूति कर लेना है। स्वयं को अपूर्ण, सीमाबद्ध, असहाय समझना एक भ्रान्ति मात्र

१. आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।। (तैत्तिरीय उप. ३/६)

है। हम पूर्ण, सर्वशक्तिमान तथा दिव्य हैं। हम अब भी वही हैं। इसका अनुभव करो और तुम तत्काल मुक्त हो जाओगे।

अवतार – हमारा विश्वास था कि ईसा मसीह ईश्वर के पुत्र और एक अवतार हैं। स्वामीजी ने उनकी पूजा और आराधना की, परन्तु एकमात्र अवतार के रूप में नहीं। उनका मानना था कि ईश्वर ने अन्य युगों तथा अन्य स्थानों पर अन्य लोगों पर भी कृपा की है।

पारसी – उन्होंने जरथुस्त्र के बचे हुए अनुयायी पारसी लोगों की कथा बताई। जब एक हजार वर्ष पूर्व मुसलमान कबीलों ने ईरान पर आक्रमण किया था, तो उन लोगों ने वहाँ से भागकर भारत में शरण लेकर जान बचायी। अग्निपूजकों की ये सन्तानें अब भी अपने प्राचीन रीति-रिवाजों के प्रति निष्ठावान हैं और अपनी स्वीकृत भूमि में अबाध स्वाधीनता के साथ उनका पालन कर रही हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देखें, तो यद्यपि यह एक छोटा-सा समुदाय है, तथापि इन लोगों ने अपने लिये एक सम्मानित स्थान बना लिया है और महान् व्यक्ति पैदा किये हैं।

ईसाई धर्म – उन्होंने हमें बताया कि ईसा के क्रूसविद्ध होने के करीब पचीस वर्ष बाद ही उनके शिष्य टॉमस द्वारा भारत में ईसाई धर्म लाया गया। भारत में कभी धार्मिक उत्पीड़न नहीं हुआ और प्रारम्भिक ईसाई धर्मान्तरितों के वंशज आज भी दक्षिणी भारत में निवास करते हैं। जब यूरोप अभी बर्बरता की अवस्था में था, तब भी भारत में विशुद्धतम ईसाई धर्म प्रचलित था। इस समय उनकी संख्या मुश्किल से दस लाख होगी, वैसे पहले कभी उनकी संख्या इसके तीनगुनी थी।

समत्व – स्वामीजी ने बताया था कि कभी वे समत्व की प्राप्ति का प्रयास कर रहे थे। उन दिनों वे प्राय: ही दुहराते – "जो सभी प्राणियों में समान रूप से परमात्मा को और सभी नश्वर वस्तुओं में उन अविनाशी को देखता है, वही ठीक-ठीक देखता है, क्योंकि ईश्वर को समरूप में सर्वव्यापी देखकर वह अपनी आत्मा के द्वारा आत्मा का हनन नहीं करता। और तब उसे सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।"[२] इससे उनकी परवर्ती काल में लिखी हुईं ये कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं –

अनुराग-घृणा का अथवा, हो भले-बुरे का बन्धन ...
है एक प्रशंसक-संशित, है एक ही निन्दक-निन्दित।[३]

हमें देखने को मिला कि कैसे वे अपने जीवन के छोटे-मोटे कार्यों में भी इस समत्व के आदर्श का पालन करते हैं। उनके समान अति संवेदनशील तथा स्वाभिमानी व्यक्ति के लिये इस आदर्श का पालन कितना कठिन था, यह बात हम काफी काल बाद ही समझ सके। एक बार कोलकाता से सम्बन्धित ईसाई मिशनरियों का एक दल उन्हें 'डेट्राएट नगर से खदेड़ने' की योजना बनाकर षड्यंत्रों में लगा हुआ था। यह पूछे जाने पर कि उन्होंने इन लोगों से आत्मरक्षा का प्रयास क्यों नहीं किया, वे बोले – "हाथी क्या कुत्तों के भूँकने की परवाह करता है? क्या वह इससे विचलित हो जाता है? वे जिसके साथ रहते थे, वह बड़े क्रोधी स्वभाव का था। किसी ने पूछा – "आप उसके साथ क्यों रहते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया – "अहा, मैं उसे धन्यवाद देता हूँ। वही तो मुझे आत्मसंयम का अभ्यास करने का अवसर देता है।" किसी भी कीमत पर अपनी सुविधा चाहनेवाले हम पाश्चात्य लोगों के लिये यह एक नई बात थी। इस प्रकार हमने प्रति दिन और प्रति घण्टे गीता के महान् आदर्शों को वास्तव के दैनन्दिन जीवन में क्रियान्वित होते देखा। मित्र के समान ही शत्रु में भी, प्रशंसक के समान ही निन्दक में भी अपनी आत्मा को ही देखना और सम्मान या अपमान – दोनों में अविचलित रहना – यही उनकी सतत साधना थी।

इतनी अल्प आयु में, एक ही दिन या मिनटों में प्रसिद्धि पा लेना बड़ी दुर्लभ घटना है, पर धर्म-महासभा में स्वामीजी के साथ ऐसा ही हुआ था। और वह केवल प्रसिद्धि ही नहीं थी, बल्कि उनसे अनुप्राणित लोगों का उत्साह तरंगायित होकर उन्मत्त पूजा के स्तर तक जा पहुँचता। इस भावुक उन्मत्त लोकप्रियता के बीच भी वे इतने शान्त बने रहे मानो हिमालय की किसी गुफा में एकाकी निवास कर रहे हों। जिस तरह की उपलब्धि के लिये लोग आजीवन संघर्ष करते हैं, उसे उन्होंने 'नाम-यश के गन्दे चीथड़े' कहकर दरकिनार कर दिया था।

कभी कभी वे एक भविष्यद्रष्टा ऋषि के भाव में होते। एक दिन ऐसे ही भाव में उन्होंने यह कहकर हम सबको अचम्भे में डाल दिया, "एक नवीन युग का सूत्रपात करनेवाला आगामी आन्दोलन या तो रूस से आएगा अथवा चीन से। ठीक किस देश से आएगा, यह तो स्पष्ट रूप से नहीं देख पा रहा हूँ, परन्तु रूस या चीन में से ही किसी एक से आएगा।" यह बात उन्होंने ३२ साल पहले तब कही थी, जब चीन मंचू शासकों के तानाशाही शासन के अधीन था और शताब्दियों तक उसकी उससे छूटने की कोई सम्भावना न थी और जब जार-शासित रूस अपने श्रेष्ठतम लोगों को श्रमिक बनाकर साइबेरिया के खदानों में भेज रहा था। एक सामान्य विचारक के लिये तो विश्व में एक नये युग का सूत्रपात करने में उन दोनों देशों की कोई भूमिका अकल्पनीय थी।

हमारे प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने व्याख्या करते हुए बताया कि प्रारम्भिक समाज में ब्राह्मणों या पुरोहितों द्वारा शासित एक धर्मतंत्र प्रचलित था। उसके बाद क्षत्रिय या सैन्य वर्ग

(शेष अगले पृष्ठ पर)

२. समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। विनश्यत्स्वविनश्यन्तं य: पश्यति स पश्यति॥ समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्। न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥ (गीता, १३/२७-२८)

३. 'संन्यासी का गीत' शीर्षक कविता से
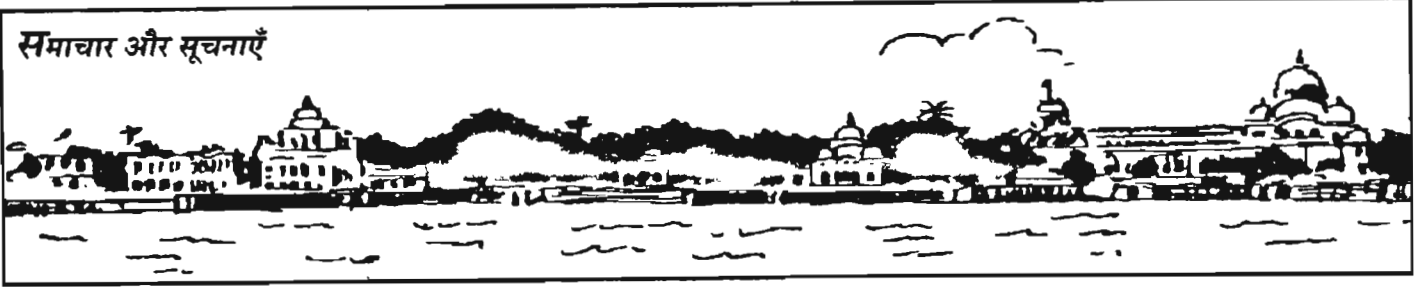
ब्रह्मलीन स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज को लोकसभा की श्रद्धांजलि

रामकृष्ण मठ तथा मिशन के १३वें महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज २५ अप्रैल २००५ को महासमाधि में लीन हुए। अगले दिन २६ अप्रैल को भारतीय लोकसभा के माननीय अध्यक्ष श्री सोमनाथ चैटर्जी ने संसद में निम्नलिखित शोक-प्रस्ताव रखा – "माननीय सदस्यो, आप लोगों को बड़े खेदपूर्वक सूचित करना पड़ रहा है कि रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज का दु:खद निधन हो चुका है। स्वामीजी भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का विश्व भर में प्रचार करनेवाले एक पूज्य व्यक्तित्व थे। समाज-सेवा उनका वैशिष्ट्य था। उनके विशिष्ट नेतृत्व में रामकृष्ण मिशन ने महत्त्वपूर्ण सेवाकार्य सम्पन्न किये हैं और विशेषकर समाज के पददलित तथा दीन-दुखियों के कल्याण तथा उन्नति के लिये गौरवपूर्ण कार्य किये हैं। धार्मिक सौहार्द्र तथा सह-अस्तित्व के भाव में उनकी अद्भुत श्रद्धा थी। अपनी आयु के ९७वें वर्ष में २५ अप्रैल २००५ को उन्होंने कोलकाता में देहत्याग किया। हम सभी इस दु:ख में सहभागी हैं और मुझे विश्वास है कि रामकृष्ण मिशन को सहानुभूति जताने में संसद के सभी सदस्य मेरे साथ होंगे। सम्मान के प्रतीक-स्वरूप स्वामीजी की स्मृति में लोकसभा के सदस्य थोड़ी देर तक खड़े रहकर मौन धारण करें।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली में श्रद्धांजलि-सभा

रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली ने उनकी स्मृति में भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में १५ मई, २००५ को एक श्रद्धांजलि-सभा आयोजित की। उक्त सभा में भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल, भूतपूर्व उप-प्रधानमंत्री तथा वर्तमान लोकसभा में नेता-प्रतिपक्ष श्री लालकृष्ण आडवानी और रामकृष्ण मठ तथा मिशन के महासचिव स्वामी स्मरणानन्दजी भी उपस्थित थे। उसी दिन दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल ने पूर्वाह्न के १० से ११ बजे तक इसका तात्कालिक सह-प्रसारण किया।

प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह इस सभा में भाग लेने ठीक १० बजे आश्रम में पहुँचे। सीधे मन्दिर में जाकर भगवान श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करने के बाद वे मन्दिर के तलघर में स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन पर निर्मित स्थायी प्रदर्शनी देखने गये। इसके बाद वे अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ सभागार में आकर मंच पर बैठे।

आश्रम के संन्यासियों के वेदपाठ के साथ सभा का श्रीगणेश हुआ। इसके उपरान्त प्रमुख अतिथियों ने ब्रह्मलीन स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के पूर्ण आकार के चित्र के समक्ष पुष्पांजलि अर्पित किये। इसके उपरान्त पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार १९८५ ई. में राजीव गाँधी द्वारा अर्पित इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार स्वीकार करते समय परम पूज्य स्वामी रंगनाथानन्द जी के भाषण की वीडियो प्रस्तुति दिखायी गयी।

इसके बाद रामकृष्ण मठ तथा मिशन के महासचिव स्वामी स्मरणानन्दजी ने एक संक्षिप्त भाषण के द्वारा माननीय अतिथियों का स्वागत किया और कहा कि स्वामी रंगनाथानन्दजी अपनी विद्वत्ता एवं वाग्मिता के लिये सुप्रसिद्ध थे, पर उनके व्यक्तित्व का एक अन्य भी पहलू था और वह था उनका हृदय। कोई समाज के किसी भी स्तर का क्यों न हो, वे सबका समान रूप से ध्यान रखते थे। वस्तुत: आज हमें ऐसे लोगों की जरूरत है, जो दूसरों का ध्यान रखते हों और दूसरों के लिये सहानुभूति रखते हों। उन्होंने आगे कहा कि स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि महान् व्यक्ति की पहचान इस बात से होती है कि वह अपने छोटे-छोटे कार्य किस भाव से करता है और इस दृष्टि से स्वामी रंगनाथानन्दजी उनके सच्चे अनुगामी थे।

पिछले पृष्ठ का शेषांश

का शासन आया। और अब हम लोग वैश्यतंत्र के अधीन हैं, जिसमें व्यावसायिक स्वार्थ के आधार पर जगत् परिचालित हो रहा है। आज आर्थिक मुद्दे ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। परन्तु अब यह पर्व भी समाप्ति पर है और इसके बाद शूद्र या श्रमिक वर्ग का अभ्युदय होनेवाला है।

प्रश्न उठा कि उन्हें कैसे ज्ञात हुआ कि वैश्ययुग अब समाप्त होने को है? और उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात थी कि उन्होंने पहले से ही कैसे जान लिया कि रूस या चीन से ही यह परिवर्तन आरम्भ होगा? वे कभी 'मुझे लगता है ...' – कहकर अपना मत प्रकट नहीं करते थे, बल्कि मानो वे एक ऐसी चीज के बारे में प्रामाणिक वक्तव्य देते थे, जिसके बारे में वे सुनिश्चित रूप से जानते हों।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा – "यूरोप एक ज्वालामुखी के मुहाने पर बैठा है। यदि आध्यात्मिकता की बाढ़ के द्वारा उसकी आग का शमन नहीं किया गया, तो विस्फोट के द्वारा उसका ध्वंस हो जायेगा।" १८९५ का वह यूरोप समृद्ध तथा शान्त था। वह विस्फोट हुआ बीस वर्ष बाद!

❖ (क्रमश:) ❖

तत्पश्चात् छात्रा प्रियंका घोष ने पूज्यपाद स्वामी रंगनाथानन्द जी की पुस्तिका 'What Life has taught me' (जीवन में मैंने क्या सीखा) से कुछ प्रेरक पंक्तियों का पाठ किया।

श्री लालकृष्ण आडवाणी का भाषण

भारत के भूतपूर्व उप-प्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी ने अपने कराची के दिनों के संस्मरण बताते हुए कहा –

माननीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंहजी, माननीय पूर्व-प्रधानमंत्री श्री गुजरालजी, पूज्य स्वामी स्मरणानन्दजी, स्वामी गोकुलानन्दजी, अन्य उपस्थित पूज्य सन्तगण, देवियो और सज्जनो ! रामकृष्ण मिशन, दिल्ली और स्वामी गोकुलानन्द जी का मैं बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस अवसर पर आमंत्रित करके पूज्य स्वामी रंगनाथानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का यह अवसर दिया है। मैंने उन्हें बताया कि १५ तारीख को मैं मुम्बई का एक कार्यक्रम स्वीकार कर चुका हूँ, लेकिन चूँकि आपने इस प्रकार का कार्यक्रम यहाँ आयोजित किया है, अत: मैं उनसे निवेदन करूँगा कि वे उसे बदल दें और उन्होंने कल ही – १४ तारीख को उसे सम्पन्न कर लिया। इसीलिये आज मैं वहाँ से लौटकर आपके बीच उपस्थित हो सका हूँ। मैं इसको अपना सौभाग्य मानता हूँ।

अभी-अभी जब प्रधानमंत्री जी यहाँ आये और गुजराल जी और मैं वहाँ कक्ष में बैठे थे, तब मैंने प्रधानमंत्री जी को कहा कि हम दोनों (मुझे तथा गुजरालजी) को यह सौभाग्य प्राप्त है कि हमारा स्वामी रंगनाथानन्दजी से परिचय तथा सम्पर्क कराची से है। हम दोनों कराची में रहते थे। तब मैं कालेज में विद्यार्थी था। स्वामीजी के गीता-प्रवचन सुनने जाता था। फिर मुझे स्मरण है कि आज से ६० साल पहले, १९४५ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर-संघचालक श्री गुरुजी, जिनका भी किसी समय रामकृष्ण मिशन से निकट-सम्बन्ध था, जब कराची आये थे, तो उन्होंने कहा कि मैं स्वामीजी से मिलने चलूँगा, तब मैं उनके साथ गया था। गीता-प्रवचन सुनने के अलावा, यदि व्यक्तिगत रूप से परिचय हुआ, तो तब हुआ और तब से लेकर आखिरी दिनों तक बना रहा।

मुझे इस बात का सौभाग्य प्राप्त है कि करीब १० महीने पूर्व जब मैं कोलकाता गया था, तो मैंने सोचा कि बेलूड़ मठ जाकर मैं स्वामीजी के दर्शन करूँ। अभी-अभी रामकृष्ण मिशन की ओर से जो वीडियो दिखाया गया, उसी से व्यक्ति को अनुमान हो सकता है कि जब वे भारत के बारे में बोलते थे, भारत की एकता के बारे में बोलते थे, तो आध्यात्मिकता से ओतप्रोत व्यक्ति किस पैशन (उत्साह) के साथ, किस अर्नेस्टनेस (आन्तरिकता) के साथ इन बातों पर टिप्पणी कर सकते हैं और चाहे यह १९८५ का, आज से २० साल पहले वीडियो टेप था। तो इसके २० साल बाद, जब मैंने पिछले साल बेलूड़ मठ में जाकर उनके दर्शन किये, उस समय वे कुर्सी पर बैठे हुए थे। मैं उनके साथ करीब आधा घण्टा बैठा होऊँगा। लेकिन उनकी बातचीत में वही और वैसा ही अर्नेस्टनेस तथा पैशन था। उन्होंने मुझसे पूछा – "१९४७ में पाकिस्तान बनने के बाद वहाँ की कांस्टीच्युएन्ट असेम्बली में या अन्य कहीं हुआ मोहम्मद अली जिन्ना का जो पहला भाषण था, उसे तुमने पढ़ा है?" मैंने कहा – "हाँ, पढ़ा है।" वे बोले – "उस भाषण में उन्होंने सेकुलरवाद (धर्म-निरपेक्षता) का जैसा प्रतिपादन किया है, वह आश्चर्यकारक है।" मैंने कहा – "आपने जो बात कही, वह बिल्कुल सही है।" उन्होंने कहा – "उस व्याख्यान की प्रति आप कहीं से प्राप्त करके मुझे भिजवा सकते हैं?" मैंने कहा – "भिजवाऊँगा, उसमें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए।" और यहाँ लौटकर मैंने उन्हें वह भेजा था। लेकिन मैं इस बात का उल्लेख केवल इसलिए कर रहा हूँ कि एक महान् सन्त और साधु तो थे ही, संन्यासी तो थे ही, साथ ही वे एक महान् चिन्तक, एक महान् दार्शनिक भी थे।

इन्हीं दिनों जब मैंने पढ़ा कि उनका जन्म १९०८ ई. में केरल के त्रिचुर में हुआ था, तो मुझे स्मरण हो आया कि उसके पास ही कहीं कालड़ी है, जहाँ आदि शंकर का जन्म हुआ था। वहाँ से शायद पास ही है, बहुत दूर नहीं है और इसीलिए मुझे लगा कि जैसे उस काल में, इतनी शताब्दियों पूर्व एक महान् संन्यासी, साथ-साथ एक महान् विद्वान्, जो गीता हो, या उपनिषद् हो, या पुराण हो, या कोई अन्य ग्रन्थ हो, पौराणिक ग्रंथ हो, उसमें का कठिन-से-कठिन विषय हो, उसकी भी व्याख्या वे इतने सरल, सहज शब्दों में करते थे। वैसे ही कह सकते हैं कि स्वामी रंगनाथानन्दजी, हर दृष्टि से, हमारे आज के इस युग के आदि शंकराचार्य थे।

इसके बाद जब वे दिल्ली (आश्रम) के अध्यक्ष बने, तो मैं यहाँ आकर कभी-कभी उनके व्याख्यान सुनता था। फिर यहाँ से हैदराबाद चले जाने के बाद भी, जब कभी वे यहाँ आते, तो मुझे उनसे मिलने और बातचीत करने का सौभाग्य मिलता था। मैं जानता हूँ कि चाहे पाण्डित नेहरू हों, या श्रीमती गाँधी, या राजीव गाँधी, या उसके बाद चाहे (अटल बिहारी) वाजपेयीजी हों, देश के हित के लिए प्रयत्नशील जितने प्रमुख लोग हुए, वे सब-के-सब हमेशा आकर उनसे प्रेरणा लेना, उनसे सलाह लेना, यह एक प्रकार का क्रम बना रहा और यह उनकी महानता थी, उनकी श्रेष्ठता थी। आज हम उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। मैं भी आपके साथ इसमें सम्मिलित हुआ हूँ। मैं इसे अपना अहोभाग्य मानता हूँ और अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।[१]

---

१. बँगला दैनिक 'आनन्द-बाजार-पत्रिका' के २६ अप्रैल के अंक में भी श्री आडवाणी के निम्नलिखित संस्मरण प्रकाशित हुए थे – "देश के स्वाधीनता के पूर्व कराची में मैंने पहली बार स्वामी रंगनाथानन्दजी का व्याख्यान सुना था। युवा संन्यासी, तेजस्वी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व और अद्भुत व्याख्यान ! प्रथम बार मैं किसी का व्याख्यान सुनकर मुग्ध हुआ था। उसके बाद मैं प्राय: ही उनका व्याख्यान सुनने जाता। ऐसे वाग्मी, ऐसे विद्वान् मैंने कम ही देखे है। रंगनाथानन्दजी अनेक वर्षों तक दिल्ली आश्रम के सचिव भी थे। तब भी मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्पर्क था। सक्रिय राजनीति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। स्वामी विवेकानन्द सुस्पष्ट राष्ट्र-चेतना के अग्रदूत होकर भी, दलीय राजनीति से कोसों दूर थे। स्वामी रंगनाथानन्दजी भी स्वामीजी के उसी मार्ग पर चले थे। किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्ध न रखकर भी, राष्ट्रीय

पूर्व-प्रधानमन्त्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल का भाषण

माननीय प्रधानमंत्रीजी, सत्कारयोग्य आडवाणीजी, स्वामीजी, बहनो और भाइयो ! आडवाणीजी ने कराची से बात शुरू की थी। मैं लाहौर में युनिवर्सिटी की पढ़ाई खत्म करके कराची में जाकर बस गया था। कराची की जिंदगी उन दिनों बड़ी अलग तरह की थी। और जिंदगी का एक सबसे बड़ा जो रोशन-मीनार था, वह स्वामीजी थे। वहाँ रामकृष्ण मिशन में लेक्चर होते थे। हम हर इतवार को वहाँ जाते थे। और कराची में कोई भी सोचने-समझनेवाला ऐसा नहीं होगा, जो वहाँ न जाता हो। खासकर उस युग में जब बँटवारे का एक नया जहर आहिस्ता-आहिस्ता हवा में फैलने लगा था। उन दिनों भी धर्मों और उसूलों से ऊपर उठकर बहुत बड़ी तादाद में लोग स्वामीजी के भाषणों में जाया करते थे।

स्वामीजी ने एक छोटी-सी कमेटी बनायी थी। उस कमेटी को आश्रम के लिए फंड जमा करने का काम दिया था। उस वक्त वहाँ सुन्दरी बहुरानी, शान्ति-निकेतन से नयी-नयी अपनी तालीम खत्म करके आई थी। अब तो दिल्ली में आकर बस गयी हैं। तो फंड एकत्र करने के लिए उनके नृत्य का इन्तजाम किया गया। उसके बाद स्वामीजी ने एक नयी बात कही और वह यह कि हम कराची में आश्रम के लिए जितना भी फंड इकट्ठा करेंगे, उसमें उन लोगों का बहुत हाथ होना चाहिए, जो मुख्तलिफ धर्मों के माननेवाले हों। यह स्वामीजी की बहुत दूर की सोच थी।

पार्टीशन हो गया। बँटवारे के बाद जिसके जहाँ सींग समाये, वहीं चला गया। मैं यहाँ आकर बस गया। स्वामीजी हैदराबाद चले गये। लेकिन मिलना-मिलाना कायम रहा। वक्त गुजरता गया। मैं उस जमाने में राजदूत बनकर मास्को चला गया था। थोड़े दिनों बाद, स्वामीजी का खत आया कि वे मास्को आ रहे हैं। मुझे खुशी भी हुई और चिन्ता भी। खुशी इस बात की कि स्वामीजी के दर्शन होंगे और चिन्ता इस बात की कि वहाँ के कम्युनिस्ट समाज में स्वामीजी करेंगे क्या, कहेंगे क्या। और दूसरी बात यह कि स्वामीजी अन्य सब भाषायें जानते होंगे, पर रूसी नहीं जानते थे, यह मुझे इल्म था। स्वामीजी ने मुझ पर एक और बहुत बड़ी मेहरबानी की और कहा कि मैं तुम्हारे घर ठहरूँगा। यह मेरी जिंदगी का सबसे बड़ा सौभाग्य था। यह सौभाग्य कि इतना बड़ा सोचनेवाला, इतना बड़ा बुद्धिजीवी जब आपके पास ठहरता है; जितने बड़े आदमी होते हैं, जब उनको आप दिन-रात देखते हैं, तो उनके कई रूप आपके सामने आते हैं। अच्छे भी और इतने अच्छे नहीं भी। स्वामीजी को हम अपने घर में जितना ही देखते गए, उतना ही उनके मुतल्लिक हमारा आदर बढ़ता चला गया।

मास्को यूनिवर्सिटी में स्वामीजी के तीन लेक्चर थे। सवाल पैदा हुआ कि स्वामीजी किस बात पर बोलेंगे और मुझे यह उनकी कही हुई बात नहीं भूलती। कुलपति ने मुझे टेलीफोन किया और पूछा कि स्वामीजी किस विषय पर बोलेंगे। मैंने स्वामीजी को पूछा कि कुलपति आपसे पूछ रहे हैं कि आप किस विषय पर बोलेंगे और जो विषय उन्होंने चुना, उसे सुनकर मुझे हैरानी हुई। उन्होंने कहा – 'मार्क्सिजम एंड ह्यूमेनिटी (मार्क्सवाद और मानवतावाद)। कुलपति मेरी बात सुनकर घबरा गये। उन्होंने सोचा कि कहीं मार्क्सवाद को नीचे-ऊपर न कर दें ! उनको इसकी बड़ी चिन्ता थी।

मेरी एक चिन्ता और भी थी। वह यह थी कि स्वामीजी को तो अंग्रेजी में बोलना था, क्योंकि रूसी तो वे बिल्कुल भी नहीं जानते थे। रूसी भाषा समझनेवाले श्रोताओं को स्वामीजी किस तरह समझायेंगे ! मैंने स्वामीजी पूछा – "क्या आप अंग्रेजी में बोलेंगे? श्रोतागण तो वहाँ सब रूसी होंगे, तो बात कैसे बनेगी?" उन्होंने कहा – "नहीं, अनुवाद करनेवाले को मेरे पास एक दिन पहले बुला लो और मैं उसको समझा दूँगा, मुझे क्या कहना है।" हमारे दूतावास में एक गांगुली थे, आजकल दिल्ली में बसे हुए हैं। वे अनुवाद करते थे। दुभाषिये थे। वे स्वामीजी के पास दो दिन आते रहे और स्वामीजी उसको अपने भाषण का प्रारूप समझाते रहे, ताकि अनुवाद केवल लफ्जों में न हो, भाव में भी हो। स्वामीजी के तीन लेक्चर हुए और हरेक की बुनियाद मार्क्सवाद थी।

हमारी बदकिस्मती यह थी कि उस वक्त टेप रिकार्डिंग का बहुत रिवाज नहीं था और उन भाषणों की रिकार्डिंग नहीं हुई। होता, तो आज के दिन वे लेक्चर बड़े काम आते। स्वामीजी, मैं आपका आभारी हूँ कि आपने आज सुबह मुझे आपके बीच आने और स्वामीजी की याद में श्रद्धांजलि के फूल पेश करने का मौका दिया। मेरे जीवन में उनका बहुत प्रभाव पड़ा है। बहुत-बहुत धन्यवाद।[२]

राजनीति में कहाँ क्या हो रहा है, उस विषय में उनकी अदम्य जिज्ञासा और उत्साह था। राजग के केन्द्र में शासन काल में मैं केन्द्रीय मंत्री के रूप में अन्तिम बार बेलूड़ मठ गया था, तभी उनसे अन्तिम बार भेंट हुई थी। उस समय हम दोनों की सुदीर्घ बातचीत हुई थी। मैंने उनसे कहा था – सम्भव है आपको याद न हो, कराची में मैं नियमित रूप से आपका व्याख्यान सुनने आश्रम जाता था। बेलूड़ में रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष होने पर उन्हें अभिनन्दन ज्ञापित करने जाकर कराची की बातें बारम्बार याद आ रही थीं। मेरी तरुणाई की स्मृतियों के साथ वे आज भी जुड़े हैं। ... उनके महाप्रयाण से मैं शोकार्त हूँ।

२. बँगला 'आनन्द-बाजार-पत्रिका' के २६ अप्रैल के अंक में भी श्री गुजराल के निम्नलिखित संस्मरण प्रकाशित हुए थे – 'संन्यासी कहने से बहुतों के मन में जो धारणा होती है, स्वामी रंगनाथानन्द जी उससे पूर्णतः भिन्न थे। देश स्वतंत्र होने के पूर्व करीब १९४४-४५ में वे कराची रामकृष्ण मिशन के प्रमुख थे, तभी से हमारा उनके साथ परिचय था। वे केवल आध्यात्मिक ही नहीं अपितु सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में भी बड़े उत्साही थे। उन दिनों कराची में 'सुन्दरी' नामक एक बालिका के नृत्य-कार्यक्रम को सफल बनाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। ... स्वामी रंगनाथानन्दजी एक महान् बौद्धिक पुरुष थे। जब वे कराची में आश्रम-प्रमुख थे, तब मैं अपनी पढ़ाई समाप्त कर व्यापार कर रहा था। मैं विभिन्न विषयों के ग्रन्थ पढ़ता था। तरह-तरह के प्रश्न लेकर उनके पास जाता था। उस समय मैं नहीं जानता था कि मैं भारतीय राजनीति से इस प्रकार जुड़ जाऊँगा और अन्ततः देश का प्रधानमंत्री तक बनना होगा। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी भी उन्हें खूब पसन्द करती थी। मैं उनके समय में सूचना व प्रसारण मंत्री था। उन दिनों मैं बहुत प्रयास करता कि स्वामी रंगनाथानन्दजी के सन्देश,

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की श्रद्धांजलि

माननीय स्वामी गोकुलानन्दजी, माननीय स्वामी स्मरणानन्द जी, माननीय गुजराल साहेब, आदरणीय आडवानीजी, रामकृष्ण मिशन के सुधी संन्यासीवृन्द, समादृत महिलाओ एवं सज्जनो !

आज हम लोग अपने काल के जिन महान् आत्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने यहाँ एकत्र हुए हैं, जो एक सच्चे विद्वान् और ज्ञानी पुरुष थे, जो परम आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित थे, जिस आत्मज्ञानी पुरुष के हृदय से आनन्द का विकिरण-प्रसारण होता था, उन स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के प्रति श्रद्धा अर्पित करके मैं अपने को कृतार्थ अनुभव करता हूँ।

अपने देश के, इस काल के अन्यतम धर्माचार्य स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के ब्रह्मलीन होने का सन्देश पाते ही, हमारे देश के करोड़ों नर-नारियों का हृदय शोक से विदीर्ण हो गया और सबने अपूरणीय क्षति का अनुभव किया। स्वामीजी एक असाधारण प्रतिभावान् व्यक्ति, एक महान् आचार्य, एक महान् विद्वान्, एक ऋषि, दीन-दुखियों के सहायक और साथ ही हमारी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता की श्रेष्ठ परम्परा में एक धार्मिक व्यक्ति तथा एक सच्चे मानवतावादी थे। वे एक निर्माता भी थे – उन्होंने देश-विदेश में रामकृष्ण मिशन के नये ज्ञान तथा ध्यान के केन्द्रों का निर्माण किया। भारत की कई पीढ़ियों ने उनके चरणों में बैठकर हमारे महान् शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी। निःसन्देह, ज्ञात इतिहास में वे गीता के परम काव्यात्मक तथा दार्शनिक व्याख्याकारों में एक थे। वेदान्त पर उनके व्याख्यानों को विश्व भर के विद्वानों से सम्मान तथा उनके श्रोताओं की प्रशंसा हासिल हुई।

स्वामीजी का जीवन सर्वांग-सम्पूर्ण था और वे हमारे विशाल उप-महाद्वीप के कोने-कोने में छाये रहे। उन्होंने पूरे विश्व में और विशेषत: दक्षिणी एशिया के हर अंचल में अपने श्रोताओं को प्रेम, त्याग, विद्वत्ता, करुणा के आदर्श और ज्ञान तथा विद्या के महत्त्व की शिक्षा प्रदान की। रामकृष्ण मिशन के अनुयायियों द्वारा वे 'विवेकानन्द' के प्रतिरूप माने जाते हैं और यह उचित भी है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों की उनकी व्याख्या में आधुनिकतावाद, मानवतावाद तथा स्वधीनता का भाव ओतप्रोत है और स्वामी विवेकानन्द को हिन्दुत्व की ऐसी ही व्याख्या पसन्द थी।

स्वामी रंगनाथानन्दजी एक महान् विद्वान् थे और जैसा मैंने पहले कहा, वे एक महान् शिक्षक भी थे। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के साथ ही स्वामीजी के विद्वत्तापूर्ण लेखों ने लाखों युवकों को, इस प्राचीन तथा पवित्र-भूमि भारत के सभी महान् धर्मों के सच्चे महत्त्व का बोध कराने में सहायता की। स्वामीजी चाहे केरल में रहे हों या कोलकाता में, हैदराबाद में रहे हों या नई दिल्ली अथवा कराची में, वे जहाँ कहीं भी रहे, वहीं अपने पीछे प्रबुद्ध लोगों की कई पीढ़ियाँ छोड़ गये और उन लोगों ने मानव-सेवा तथा जन-कल्याण में अपना जीवन समर्पित कर दिया है।

किशोरों से लेकर वृद्धों तक, स्वामीजी के व्याख्यान हर आयु के श्रोताओं को आकृष्ट करते थे। कोई उनके पास ज्ञानार्जन हेतु आता, तो कोई प्रेरणा पाने, पर सभी सुख और मन:शान्ति की खोज में ही आते थे। उनकी मधुर वाणी, सुन्दर व्यक्तित्व, मानवीय दृष्टिकोण और साथ ही प्रकाण्ड विद्वत्ता बड़ी संख्या में श्रोताओं को आकृष्ट करती थी। वे हमारे युग के एक महान् प्रवक्ता और दिव्यता के साकार विग्रह थे।

मैंने स्वयं भी बैठकर स्वामीजी के व्याख्यान सुने हैं और उनकी वाणी एवं विचारों में तल्लीन हो गया हूँ। इससे मुझे उन विलक्षण पुरुष में विद्यमान विशाल ज्ञान-भण्डार की झलक मिली थी। उनके चेहरे से शान्ति और आनन्द विकिरित होता रहता था। उनके सान्निध्य में व्यक्ति सांसारिक अस्तित्व की दुश्चिन्ताओं से मुक्त हो जाता था। स्वामीजी का जीवन मुझे भगवद्गीता की कुछ पंक्तियों की याद दिलाता है –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।। १२/१३
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ।। १२/१८
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।। ६/३०
सर्व भूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।। ६/३१

भावार्थ – जो सभी प्राणियों के प्रति सद्भाव, मित्रता तथा करुणा का भाव रखता है; जो शत्रुओं तथा मित्रों, मान तथा अपमान, सर्दी तथा गर्मी, सुख तथा दुख में समभाव रखता है और आसक्ति से रहित है; ऐसा व्यक्ति मुझे प्रिय है। जो व्यक्ति मुझको सभी में और सबको मुझमें देखता है, वह कभी मुझसे अलग नहीं होता और न मैं उससे अलग होता हूँ। जो सभी प्राणियों में स्थित मेरी एकत्व-भाव से उपासना करता है, वह योगी मुझमें ही निवास करता है।

स्वामी रंगनाथानन्दजी हमारे युग के एसे ही एक महान् योगी थे। उनके महाप्रयाण से विश्व ने एक सच्चे संन्यासी को खो दिया है। हम सभी पूर्वापेक्षा श्रीहीन हो गये हैं। मैं रामकृष्ण मिशन से अनुरोध करता हूँ कि वे स्वामीजी की रचनाओं, उनके व्याख्यानों के ऑडियो-वीडियो टेप को प्रकाशित करके उनकी स्मृति को जीवन्त रखें, ताकि भावी पीढ़ियाँ भी स्वामीजी के ज्ञान, कृपा तथा करुणा से मंत्रमुग्ध तथा प्रबुद्ध हो सके। स्वामीजी, मैं आपका आभारी हूँ कि आपने मुझे आमंत्रित कर स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का सुअवसर प्रदान किया।

❑ ❑ ❑

उनके ग्रन्थों तथा विचारों का देश में खूब प्रचार हो। उनके महाप्रयाण से मुझे बड़ा शोक हो रहा है। एक ज्ञानी पुरुष इस पृथ्वी को छोड़कर चले गये। प्रधानमंत्री होने के बाद भी मैंने उनसे सम्पर्क रखा था, आशीर्वाद लिया था। कराची से चले आने के बाद जीवन भर उनके साथ सम्पर्क रखा। ऐसी बात नहीं कि हमेशा उनसे भेंट होती हो, पर एक अदृश्य सम्बन्ध था। उन्होंने अपना पूरा जीवन ही जीव सेवा में लगा दिया था। पठन-पाठन, शोध आदि में लगा व्यक्ति बहुधा लोगों से विच्छिन्न हो जाता है, परन्तु उनके जीवन में ऐसा नहीं हुआ।
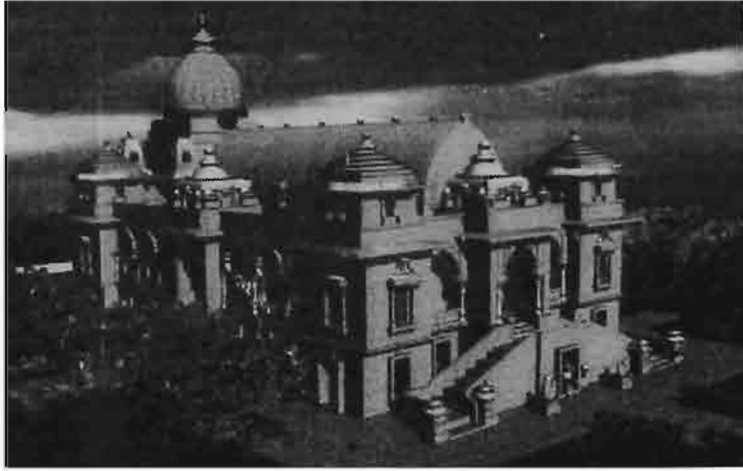
नम्र निवेदन

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

प्रिय भक्तजन एवं सज्जनो !

स्वामी विवेकानन्द द्वारा संस्थापित रामकृष्ण संघ की एक शाखा, भारतवर्ष के मध्य-भाग में बसे हुए इस नागपुर में भी है। धन्तोली मुहल्ले में स्थित 'रामकृष्ण-मठ' नाम से विख्यात यह संस्था 'शिवज्ञान से जीवसेवा' के आदर्शानुसार विगत ७४ वर्षों से अपनी विभिन्न गतिविधियों के साथ जनता की सेवा में निरत है।

भगवान् श्रीरामकृष्ण का वर्तमान सार्वजनीन मन्दिर तथा उससे संलग्न प्रार्थना-गृह अब जीर्ण-शीर्ण हो चुका है और उसकी दीवारों में दरारें पड़ चुकी है। अब यथाशीघ्र उसके स्थान पर एक नया मन्दिर तथा प्रार्थना-गृह बनाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त दिन-दिन भक्तों की संख्या में हो रही वृद्धि के फलस्वरूप भी कुछ समय से प्रार्थना-गृह में स्थान की कमी का बोध किया जा रहा है। अत: हमने पुराने देवालय-भवन के स्थान पर एक नये विशाल मन्दिर तथा प्रार्थना-गृह बनवाने का संकल्प किया है। इस भवन का निर्माण निम्नलिखित विवरण के अनुसार होगा –

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	**११७'×५८'**
मन्दिर की उँचाई	**६७'**
गर्भ-मन्दिर ***(पूजागृह)***	**१८.५'×१८.५'**
उपासना कक्ष *(५०० भक्तों के बैठने के लिये)*	**६७'×४०'**
दोनों ओर के बरामदे	**६७'×५'**
मन्दिर-तलघर एवं सभाभवन	**९१.५'×५१'**

इसके अलावा फीजियोथेरपी यूनिट के ऊपर की मंजिल पर भी निर्माण-कार्य होगा।

इन समस्त निर्माण-कार्यो पर कुल मिलाकर लगभग तीन करोड़ रुपयों का खर्च आयेगा, जिसके लिए यह मठ जन-साधारण से प्राप्त होनेवाले दान पर ही निर्भर है। हमारा आपसे आन्तरिक अनुरोध है कि समग्र मानवता के आध्यात्मिक तथा सर्वांगीण उन्नयन हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप उदारतापूर्वक अंशदान करें।

आप सभी पर भगवान श्रीरामकृष्ण, माँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्दजी का आशीर्वाद वर्षित हो – इस प्रार्थना तथा शुभकामनाओं सहित –

प्रभु की सेवा में,

स्वामी ब्रह्मस्थानन्द

(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)
अध्यक्ष
रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

कृपया ध्यान दें –
दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा **रामकृष्ण मठ, नागपुर** के नाम पर भेजें। दान की राशि आयकर की धारा ८०-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२
फोन : २५२३४२२, २५३२६९० ● फॅक्स : २५३७०४२

देश की मिट्टी। देश की हवा।
देश का पानी। देश की दवा।

बैद्यनाथ दवाएँ

७०० से भी अधिक आयुर्वेदिक दवाओं के विश्वसनिय निर्माता।

मधुमेह (डायबीटीज)

पर आयोजित इन्टरनेशनल सेमीनार (डायबिट्रीट 2002, पुणे) मे देश–विदेश के ख्यातीप्राप्त आयुर्वेद विशेषज्ञों द्वारा मधुमेह नियंत्रण हेतु "सर्वश्रेष्ठ उत्पादन" के रुप में पुरस्कृत

आयुर्वेद के गहन अनुसंधान एवं व्यापक परीक्षणों से बनाया गया पूर्णतः प्रभावकारी नुस्खा। "बैद्यनाथ मधुमेहारी" के सेवन से रक्तगत शर्करा पर नियंत्रण तथा स्वास्थ्य कायम रखने मे मदद होती है एवं मधुमेह से संबंधीत शारिरीक दुर्बलता, थकान, हाथ–पॉव के झनझनाट इ. लक्षणों को दूर करने मे सहायक है।

बैद्यनाथ मधुमेहारी ग्रॅन्यूल्स की क्लिनीकल ट्रायल नागपूर के सुप्रसिद्ध डायबिटॉलॉजिस्ट डॉ. शरद पेंडसे (एम.डी.मेडीसीन) के यहाँ हुई।

निष्कर्ष : मधुमेहारी ग्रॅन्यूल्स डायबिटीस के रुग्ण (NIDDM) में लगातार तीन महिने तक देने के बाद रक्तगत शर्करा नियंत्रित होकर डायबिटीस संबंधित विकारों को दूर होने में लाभ मिला।

बैद्यनाथ मधुमेहारी
Baidyanath MADHUMEHARI GRANULES

बैद्यनाथ मधुमेहारी

स्त्री–पुरुष दोनो के लिए उपयोगी

मुफ्त पुस्तिका के लिये डाक टिकट लगा हुवा लिफाफा निम्न पते पर भेजे

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि. ग्रेट नाग रोड नागपूर–9